हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका २६ वाँ ग्रन्थ।

तारावाई

(ऐतिहासिक नाट्य काव्य)
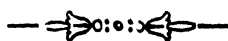
मूल लेखक—

सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल राय।

अनुवादकर्त्ता—

पं० रूपनारायण पाण्डेय।
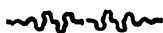
प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

चैत्र, १९८५

अप्रैल, १९२९।

द्वितीयावृत्ति।] [मूल्य एक रुपया।

सजिल्दका डेढ़ रुपया।

काशक

नाथूराम प्रेमी,
मालिक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक—
श्री दुलारेलाल भार्गव
प्रो० गंगा फाइन आर्ट प्रेस,
लखनऊ।

सिर्फ शुरूके आठ पेज मंगेश नारायण कुलकर्णीके कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार, बम्बईमें छपे।

वक्तव्य।

(प्रथमावृत्तिसे)

स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलाल रायने जो अनेक मनोहर नाटक लिखे हैं, उनमेंसे यह 'ताराबाई' भी एक है। इस नाटकका उपादान टाड साहबके 'राजस्थान'से लिया गया है। पृथ्वीराज और ताराकी कहानी अब भी राजपूतानेके चारण-कवियों द्वारा गाई जाती है और सर्वसाधारणका मनोरंजन करती है। कविने नाटकका मूल वृत्तान्त 'राजस्थान'से लिया है, और अप्रधान घटनाओंकी स्वयं कल्पना की है। यह कोई बुरी बात नहीं है। क्योंकि नाटक इतिहास नहीं है। द्विजेन्द्रबाबूने इसे गीतिनाट्यके रूपमें अन्त्यानुप्रासहीन पद्यमें लिखा है। बंगालमें इस समय गीति-नाट्योंका बहुल प्रचार है। बहुधा उन गीति-नाट्योंमें अन्त्यानुप्रासहीन पद्य ही लिखे जाते हैं। नाटकोंके सिवा बंगलाकी अधिकांश कवितायें भी अन्त्यानुप्रासहीन पद्यमें ही लिखी जाती हैं। ऐसी कविताका आदर भी बंगालियोंमें अधिक है। नवीनचन्द्र सेन, माइकेल-मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि सुकवि अन्त्यानुप्रासहीन कविताके पथप्रदर्शक या आचार्य समझे जाते हैं।

हमारी हिन्दीमें अभीतक यही फैसला नहीं हुआ है कि कविताके लिए खड़ी बोली उपयुक्त है या व्रजभाषा। कोई व्रजभाषाका पक्ष लेकर खड़ी बोलीको थोथी भाषा, रूखी जबान कहकह कर कोसता है और कोई खड़ी बोलीका हिमायती बनकर व्रजभाषाको गँवारू भाषा कहनेमें जरा नहीं हिचकता। अभी यह प्रश्न अच्छी तरह उठाया ही नहीं गया है कि अन्य सहयोगिनी भाषाओंकी तरह हिन्दीमें भी अत्यानुप्रासहीन कविताका प्रचार होना चाहिए या नहीं। इतना होनेपर भी यह बात नहीं कही जा सकती कि हिन्दीके कवियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट नही हुआ है।

समाचारपत्रों और मासिकपत्रोंमें कभी कभी एकआध अन्त्यानुप्रासहीन कविता प्रकाशित हो जाया करती है। काशीसे निकालनेवाले 'इन्दु'में श्रीयुत बाबू जयशंकरप्रसादजीकी ब्लैंकवर्स (अन्त्यानुप्रासहीन) कवितायें प्रायः हर महीने निकला करती हैं। आपने 'प्रेम-पथिक' नामका एक खंड-काव्य भी ऐसी ही कवितामें लिखकर प्रकाशित किया है। अन्त्यानुप्रासहीन कविताके पक्षपाती दूसरे कवि आजमगढ़के पंडित अयोध्याप्रसादजी उपाध्याय हैं। आप भी इसी शैलीकी

कवित.यें लिखकर सरस्वती आदि मासिकपत्रोंमें प्रकाशित कराया करते हैं। उपाध्यायजीने 'प्रिय-प्रवास' नामक एक मनोहर महाकाव्य अन्त्यानुप्रासहीन पद्योंमें लिखकर प्रकाशित कराया है। तीसरे कवि पंडित लोचनप्रसादजी पाण्डेय हैं। आपकी भी ऐसी कई कवितायें पत्रोंमें निकल चुकी हैं। आपने 'संसार' नामका एक छोटासा काव्य भी ऐसी ही कवितामें लिखकर प्रकाशित कराया है। जहाँतक मुझे मालूम है, इन तीन कवियोंके सिवा और किसीने हिन्दीमें ऐंसी कोई पुस्तक नहीं लिखी है।

हिन्दीमें अन्त्यानुप्रासहीन कविता अभीतक बहुत थोड़ी हुई है। गीति-नाट्य तो एक भी नहीं लिखा गया। हाँ अन्त्यानुप्रासयुक्त कवितामें पं० प्रतापनारायण मिश्रने शकुन्तलाका अनुवाद अवश्य लिखा था। पर वह अन्त्यानुप्रासहीन कवितामें नहीं है। इससे पहले अन्त्यानुप्रासहीन कवितामें सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'राजा-रानी' नाटकका अनुवाद मैं कर चुका हूँ। वह इंडियन प्रेससे शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है।* यह ताराबाईका अनुवाद मेरा दूसरा प्रयास है।

अन्त्यानुप्रासहीन कविता मेरी समझमें सबसे पहले संस्कृतमें लिखी गई है। संस्कृत-कविताके जमानेमें अन्त्य अनुप्रासका बन्धन बिलकुल ही नहीं था। यह बन्धन हिन्दीकी कवितामें ही पाया जाता है। किन्तु इस समय जिस अन्त्यानु-प्रासहीन कविताका प्रचार हो रहा है, उसका आदर्श संस्कृतकी अन्यानुप्रासहीन कविता नहीं है, उसका आदर्श अँगरेजीकी 'ब्लैंकवर्स' कविता है।

ब्लैंकवर्सके सबसे पहले कवि महाकवि होमर थे। इन्होंने लैटिन भाषामें कविता की है। इनकी कविताके अँगरेजी अनुवादका विलायतमें बड़ा आदर और प्रचार है। इनके बाद रानी एलिजाबेथके समयके पहले स्केलटन् और सरे नामके दो कवि हो गये हैं, जिन्होंने ब्लैंकवर्समें कविता की है। रानी एलिजाबे-थके समयमें महाकवि शेक्सपियर हुए हैं। इन पृथ्वीप्रसिद्ध कविके सारे नाटक ब्लैंकवर्सहीमें हैं। इनके नाटकोंका संसारभरमें जैसा आदर और जितना प्रचार है, सो हिन्दीके पाठकोंमेंसे अधिकांश लोग जानते ही होंगे। इनके बाद सुकवि मिल्टन हुए हैं। इन्होंने ब्लैकवर्समें 'पाराडाइज लॉस्ट' और 'पाराडाइज रिगेण्ड' नामकी दो उत्कृष्ट पुस्तकें लिखी हैं। फिर सुकवि टेनिसनने भी ब्लैंकवर्समें कविता की है। इस समय तो अँगरेजीमें ब्लैंकवर्स लिखनेवालोंकी संख्या बहुत अधिक है।

---

* 'राजा-रानी' प्रकाशित हो चुका है।

ब्लैंकवर्सके दो भेद हैं, एक नियमित और दूसरा अनियमित। नियमित पंक्तियोंमें पाँच फुट और ग्यारह सिलेबुल होते हैं। अनियमितमें इतने भी होते हैं और इनसे कम ज्यादह भी होते हैं। कभी कभी फुटके पहले सिलेबुलपर जोर (accent) होता है और कभी दूसरेपर। जिस लाइनमें फुटके पहले सिलेबुल पर जोर (accent) नहीं होता है, दूसरे पर होता है, उसको यांबिक (Iambic) कहते हैं। इसके विपरीत लाइनको ट्रोकेक (Trochaic) कहते हैं। कभी कभी फुट और सिलेबुल भी किसी किसी लाइनमें कम आते हैं।

बंगालमें जो ब्लैंकवर्स लिखा जाता है, उससे इन नियमोंका कुछ विशेष संबंध नहीं है। उसमें अन्त्य अनुप्रास न रखनेका ही विशेष नियम है। छन्द प्रायः वही रहते हैं जिनमें अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता लिखी जाती है। मैंने भी ताराबाईमें जो अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता लिखी हैं सो इसी आदर्शपर। इसमें मैंने इक्कीस मात्रावाले अरिल्ल छन्दका प्रयोग किया है। अन्तिम अक्षरके दीर्घ होनेका एक विशेष नियम है। पर मैंने इस नियमको नहीं माना है। गुरुकी जगह दो लघु अक्षरोंका भी प्रयोग किया है। इसके सिवा इसमें ग्यारह मात्रापर पहला विराम और दस मात्रापर दूसरा विराम होनेका नियम है। इस नियमका भी पालन नहीं हो सका है। पर दोनों नियमोंका उल्लंघन करनेसे मेरी समझमें कुछ हानि नहीं है। सुगमता और वाक्योंका ठीक संबंध बनाये रखनेके लिए ऐसा करनेकी आवश्यकता आ पड़ी, इसीसे ऐसा किया गया।

ब्लैंकवर्स कवितामें काफियेका बन्धन न रहनेसे कविता करनेमें बड़ा सुभीता होता है। कभी कभी ऐसा होता है कि कविके हृदयमें जो भाव है उसे काफियेकी बाधा अच्छी तरह प्रकट नहीं करने देती। काफ़िया मिलानेके लिए कविको या तो उन भावोंको तोड़मरोड़कर लिखना पड़ता है या व्यर्थको कुछ शब्द बढ़ाने पड़ते हैं। ब्लैंकवर्स लिखनेमें इस बाधाका सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए महाकाव्य या गाथा-काव्य लिखनेमें ब्लैंकवर्सका प्रयोग अतीव उपयुक्त होता है। ब्लैंकवर्सका विशेष गुण ज़ोरदारी है। उसीसे काफ़िया न मिलानेकी कमी कुछ छिप जाती है।

हिन्दीमें अभी ब्लैंकवर्सका प्रचार बहुत कम है। हिन्दीके पाठकोंकी रुचिका हाल भी अभी प्रकट नहीं हुआ कि वे ब्लैंकवर्सकी शैलीको पसंद करते हैं या नहीं। ऐसी दशामें नहीं कहा जा सकता कि वे इस पुस्तककी रचनाको पसंद

करेंगे ग नहीं। इसके सिवा यह मेरा नवीन प्रयास है, इस कारण इसमें अनेक त्रुटियोंका होना सर्वथा संभव है। आशा है विद्वानपाठकगण नाटकके कथाभागके गुणोंपर दृष्टि देंगे; अनुवादके दोषोंको क्षमाकी दृष्टिसे देखेंगे।

अन्तमें हिन्दीके सुकवियोंसे मेरा यह अनुरोध है कि वे हिन्दीमें भी अन्त्यानुप्रासहीन कविताका प्रचार बढ़ावें। ऐसी कविताके प्रचारसे अवश्य ही हिन्दी साहित्यके एक अभावकी पूर्ति होगी। यह खयाल करके कि ऐसी कविताको कोन पढ़ेगा, ऐसी कविता करनेसे मुँह न मोड़ें। भिन्नरुचिर्हि लोकः। जिसका जी चाहेगा वह अन्त्याप्रासयुक्त कविता पढ़ेगा, और जिसका जी चाहेगा वह अन्त्यानुप्रासहीन कविता पढ़ेगा।

—रूपनारायण पाण्डेय।

निवेदन।

लगभग ११ वर्षके बाद तारावाईकी यह दूसरी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। इस बीचमें हिन्दीके काव्य-साहित्यने बहुत प्रगति की है। अन्त्यानुप्रासहीन रचनाओंका प्रचार यथेष्ट हो गया है और उन्होंने आशातीत आदर प्राप्त किया है। हिन्दीके प्रायः सभी सम्माननीय और समर्थ कवि इसके पृष्ठ-पोषक हैं और उनमेंसे अनेक तो अपने अन्त्यानुप्रासहीन काव्योंसे हिन्दीके काव्यभाण्डारको समृद्ध बनानेमें लगे हुए हैं। बहुत समयसे यह पुस्तक दुर्लभ हो रही थी। आशा है कि इसको पुनः प्रकाशित देखकर काव्यप्रेमी सज्जन प्रसन्न होंगे।

—प्रकाशक।

नाटकपात्र ।

(पुरुष)

रायमल	...	...	मेवारके राणा ।
सूर्यमल	...	...	रायमलके भाई और सेनापति ।
संग पृथ्वीराज जयमल	...	...	रायमलके पुत्र ।
पाभूराव	....	...	सिरोहीके राजा ।
सूरतान	...	...	भागे हुए टोडाके राजा ।
सारंगदेव	....	...	रायमलके एक सेनापति ।

वणिक, मालव, चन्द्रराव, फकीर आदि ।

(स्त्री)

सूरतानकी रानी

तारा	....	...	सूरतानकी कन्या ।
तमसा	...	...	सूर्यमलकी स्त्री ।
यमुना	....	...	रायमलकी कन्या और पाभूरावकी स्त्री ।

चारणी, परिचारिका, कृषकपत्नी आदि ।

द्विजेन्द्र-नाटकावली ।

भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ नाटकलेखक स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके नीचे लिखे हुए नाटक प्रकाशित हो चुके हैं । प्रत्येक नाटक ऊँचे और पवित्र भावोंसे युक्त है और हृदयपर बहुत अच्छा प्रभाव डालता है—

ताराबाई।

पहला अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—सूर्यमलका घर। **समय**—प्रातःकाल।

[रानाके भाई सूर्यमल और उनकी स्त्री तमसा।]

सूर्य०—टोड़ा अधिपति शूरतान, रणभूमिसे
भाग गए हैं !—हाय ! दिखाया, दैव, क्या !
क्षत्रिय भट चौहान, हुए यों का पुरुष?

तम०—तो अब हैं वे कहाँ ?

सूर्य०— यहाँ से दूर पर—
अरावलीगिरि-उपत्यका-वन में, प्रिये,
रहते हैं।

तम०— क्या उधर गये थे तुम कभी ?—
और अतिथि हो प्राप्त किया सत्कार था ?

सूर्य०—हाँ मैं उनके यहाँ कुटीमें था गया;
बारह दिन तक वहीं रहा था।

तम०— और क्या
उनकी रानी भी विदेशमें साथ है ?
उसका वह पहला घमंड कुछ है घटा ?

सूर्य०—रानी भी है साथ, और अतिसुंदरी
वीर-बालिका है अनेक गुण-आगरी
तारा; उसको देख मुझे विस्मय हुआ।
रामायणके श्लोक मधुर स्वरसे पढ़े;
भारी भारतकथा उसे कण्ठस्थ है।
पढ़ती उत्तरचरित, विलक्षण बुद्धि है।

तम०—रानीको मैं खूब जानती हूँ, बड़ा
गर्व अलौकिक था; परन्तु अब आज तो
दैवयोगसे दर्प हुआ सब चूर्ण है।

सूर्य०—पतितोंका दुर्भाग्य देखकर यों प्रिये,
तुमको होना नहीं चाहिए उल्लसित।
संभव सबके लिए यहाँ है एक दिन।

तम०—क्या संभव है ? पतन ? जो कि उन्नत नहीं,
उसका कैसा पतन ? सोच तो लीजिए।
मैं कुछ रानी नहीं।

सूर्य०— नहीं, रानी नहीं;
सेनापतिकी स्त्री। पर इससे भी अधिक
नारीका दुर्भाग्य देख पड़ता प्रिये।
—हाँ, कहता था—सुनो, 'संग', 'पृथ्वी' तथा

'जयमल', तीनों कुअँर राज्य चित्तौरके ।
राना जो हो, प्राप्त राज्य-लक्ष्मी करे,
तारा है उपयुक्त उसीके कामिनी ।

तम०—क्यों, क्या राना निर्विवाद कोई नहीं
हो सकता है ?

सूर्य०— ठीक जान पड़ता नहीं ।
जटिल समस्या, भाग्यचक्रका फेर है ।
छोटा जयमल, नीच प्रकृतिका, प्रिय वही
रानाको । पृथ्वी उदार निर्भीक है,
किन्तु असंयत है स्वभाव, चलता सदा
औरोंकी ही मान मन्त्रणा । संग ही
है सुशील गुणवान । किन्तु उस पर नहीं
रानाका है प्यार । कौन फिर कह सके—
राना होगा कौन ?

तम०— पुरानी चाल है—
पुत्र बड़ा ही सदा राज्य पाया करे ।

सूर्य०—मानेगा फिर कौन पुरानी चालको,
राना अपने हाथ पिन्हादें जो मुकुट
जयमलको ? इच्छा प्रधान है भूपकी ।
जयमलको ही प्रजा जानती, मानती
अपना भावी भूप । किन्तु क्या संग ही
जन्म-स्वत्वको सहज छोड़ देगा भला ?
पृथ्वी ही या शान्त रहेगा साधु हो ?

तम०—पृथ्वीका क्या स्वत्व ?

सूर्य०— स्वत्व है शक्तिका ।
सारी सेनाका पृथ्वी प्रियपात्र है !
तम०—तो है सारा राज्य अराजक, यों कहो ।
सूर्य०—एक तरहसे उसे अराजक जो कहें,
तो कुछ अनुचित नहीं ।
तम०— सुअवसर है यही ।
रानाके भाई, समर्थ, फिर आप ही
छोड़ेंगे क्यों राज्य ?
सूर्य०— राज्य मेरे लिए ?
क्या ! कहते हो मुझे भूप चित्तौरका ?
सूझा कैसा तुम्हें घोर कुविचार है ?
ऐसा कहना न अब, चलो, बस चुप रहो !

(तमसाका प्रस्थान ।)

सूर्य०—है कैसा आश्चर्य !–बड़ा, आश्चर्य है !
तमसाने किस तरह हृदयकी बातको
जान लिया ? था गया चारणीके यहाँ ।
उसने मेरा हाथ देखकर यों कहा—
"सिंहासन मेवार–राज्यका आपको
मिलना ही चाहिए; न कुछ सन्देह है !"
उच्चाशाके बंद द्वार पर उस घड़ी
सहसा जैसे एक प्रबल धक्का पड़ा ।
हलचल सी मच रही हृदयके बीच है ।
नई समस्यामें अशान्त मन हो रहा ।
तबसे सोते और जागते, हर घड़ी,

हृत्तन्त्रीके तार यही झनकारते—
कानोंमें भी यही गूँजते शब्द हैं—
"राजाका हा अनुज, राज्यकी लालसा
मैं ही किसके लिए छोड़ दूँ ?" सुन यही
स्त्रीके मुखसे बात, कलेजा हिल उठा;
अपनी छाया देख चोर ज्यों चौंकता ।
रूढ अकारण हुआ,—इसी भयसे, कहीं
पीछेसे यह प्रश्न प्रकृत प्रस्ताव हो
हो न जाय ।—यह नीच नरोंका काम है !
नहीं, नहीं, मैं ऐसे हेय कुकार्यको
कभी करूँगा नहीं । बड़ा बोभत्स है
यह विचार ! मैं पलता जिसके अन्नसे,
करूँ उसीसे युद्ध अगर तो विश्वमें
कौन करेगा किस पर दृढ़ विश्वास फिर ?
अपने मनमें जो विचार उठता, वही
किसी औरके मुखसे जो फिर सुन पड़े
तो कैसी बीभत्स भयानक बात वह
जान पड़े ! दर्पणमें निज प्रतिबिंब सा
सहसा सब प्रस्ताव दिखाई देगया
आँखोंके सामने ! घोर ! बीभत्स ! यह
ऐसा निन्दित कार्य ! असंभव है !

[पृथ्वीराजका प्रवेश ।]

पृथ्वी०— चचा !

सूर्य०—(चौंककर) कौन ? भतीजे पृथ्वी !

पृथ्वी०— हाँ मैं हूँ । अभी
चौंक पड़े क्यों आप ?

सूर्य०— नहीं; चौंका कहाँ ?

पृथ्वी०—कहिए, मुझसे आप छिपाते किस लिए ?

सूर्य०—सोच रहा था—नहीं नहीं—वह कुछ नहीं ।
साधारण थी बात ।

पृथ्वी०— चचा मेरे, वही
मुझसे कहिए—कहिए तो क्या बात है ?
आता जाता नित्य, न देखा आपको
कभी चौंकते ।—कहो ।

सूर्य०— कहूँ ?—था सोचता,
भाईको जो मृत्यु हुई तो कौन फिर
राजा होगा ?

पृथ्वी०— राजा होंगे संग ही ।
वही बड़े हैं ।—इसकी चिन्ता व्यर्थ है ।

सूर्य०—पुत्र, समस्या सरल न इतनी है ।

पृथ्वी०— चचा,
क्या ऐसा है कठिन प्रश्न ? मैं तो यही
जानूँ, बेटा बड़ा राज्य पाता सदा ।

सूर्य०—सदा नहीं । इतिहास उलटकर देख लो ।
छोटेको भी कभी-कभी गद्दी मिले ।

पृथ्वी०—जयमल को ? धिक्कार !

सूर्य०— लखा तुमने नहीं ?

पुत्र, तुम्हारे पिता उसीको चाहते

सबसे बढ़कर ।

पृथ्वी०—(चिन्ताके भावमें) लक्ष्य किया है । किन्तु जो

ऐसा ही हो, हो ; क्या मेरी हानि है ?

सूर्य०—तुम उदार हो सरल हृदयके । राज्यका

मिलना तुमको नहीं असंभव कुछ ।

पृथ्वी०— मुझे !

सूर्य०—क्यों ? तुम हो बलवान; और सेना सभी

है अनुगत । फिर राजपुत्र क्या तुम नहीं ?

पृथ्वी०— (आश्चर्य से) मैं पाऊँगा राज्य !

सूर्य०— सुनो बेटा, तुम्हें

मैंने पाला बड़े यत्नसे । गोदमें

रक्खा । चूमा किया प्यारसे । हृदय से

सदा लगाये रहा । तुम्हें जो राज्यके

सिंहासन पर बिठा सकूँ तो पूर्ण हो

इच्छा मेरी ।

[संग का प्रवेश ।]

संग०— चचा !

सूर्य०— कहो, क्या है खबर ?

संग०—जयमल—

सूर्य०— हाँ, क्या किया ?

संग०— कहींसे बालिका

एक पकड़कर लाया है । उसका पिता

रानाजीके पास इसी अभियोगको
आया है इस घड़ी। आप तो जानते,
उनकी कैसी धर्मनीति, कर्तव्यमें
अति कठोर है। रक्षा जयमलकी करो।

सूर्य०—इस बारेमें पुत्र, न मैं कुछ कर सकूँ।
होने दो उपयुक्त दण्ड।

संग०— समझाइए
रानाजीको। वह अबोध बालक अभी।

पृथ्वी०—जयमल बालक है अबोध? चलिए, उसे
मैं ही दूँगा दण्ड दोषका। दुष्ट है!

सूर्य०—देखो जयमल यहीं आ रहा है।

[जयमलका प्रवेश।]

पृथ्वी०— कहो
जयमल, क्या तुम सचमुच कोई बालिका
हर लाये हो? झूठ न कहना!

जय०— सत्य है
हर लाया हूँ एक बालिका सुन्दरी।

पृथ्वी०—अच्छा तो अब उसे अभी तुम छोड़ दो।

जय०—क्यों छोड़ूँ? तुम क्यों हो आज्ञा दे रहे?

पृथ्वी०—मैं हूँ तुमसे बड़ा; मुझे अधिकार है।

जय०—मुझसे होगे बड़े; न यह मैं मानता।

पृथ्वी०—उत्तर दो, उसको छोड़ोगे या नहीं?

जय०—(संगसे) दादा—

पृथ्वी०— बोलो, छोड़ोगे? (गर्दन पकड़ना)

संग०— पृथ्वी, सुनो,
जयमलको दो छोड़ ।
पृथ्वी०— आप तो जाइए।
(जयमलसे) छोड़ोगे, या नहीं ?
जय०— छोड़ दूँगा।
पृथ्वी०— अभी
चलकर मेरे साथ सामने छोड़ दो।
(पृथ्वीराज और जयमल का प्रस्थान।)
संग०—पृथ्वी, इतने क्यों रूखे होते ? अभी
जयमल है नासमझ।
(प्रस्थान के लिए उद्यत।)
सूर्य०— संग !
संग०— क्या है चचा ?
सूर्य०—तुमसे जयमल जलता है।
संग०— मालूम है।
सूर्य०—और घृणा भी करता है।
संग०— क्यों ? किस लिए ?
सूर्य०—तुम उससे हो बड़े, इसीसे।
संग०— हाय रे
बालक, मूढ़, अबोध ! (प्रस्थान।)
सूर्य०— संग तेरा चरित
है उदार अति उच्च !–किंतु तो भी—
[यमुना का प्रवेश।]
यमु०— चचा !
मँझले दादा कहाँ गए, मालूम है ?

सूर्य०—क्यों यमुना ?

यमु०— मैं उनको देखा चाहती ।

सूर्य०—क्यों ?

यमु०— सो तो मालूम नहीं ।

सूर्य०— यह बालिका
अद्भुत है ! चल तुझे दिखा दूँ, साथ चल ।

(दोनों का प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य

स्थान—रास्ता । **समय**—प्रातःकाल ।

गाते हुए बालकोंका प्रवेश ।

गजल । ताल कव्वाली ।

अभी न निकले हैं सूर्य देखो, न पूर्व—आकाश जगमगाया ।
दिनेशकी राह तक रही है मही; अभी झुटपुटा सुहाया ॥ अभी०
सभी तरफ है अभी अँधेरा, समस्त नीरव निकुंज भी है ।
अभी पड़े सो रहे हैं भौंरे खिले द्रुमों पर, जिन्हें बसाया ॥ अभी०
ललाम लाली लिये ये बादल, अरुण-किरण से हुए हैं रंजित ।
फटा है जैसे हृदय अँधेरेका, खून उसका उमड़के छाया ॥ अभी०
वो सूर्य देखो निकल रहे हैं, निकलते ऊपरको चढ़ रहे हैं ।
प्रभाकी छिटकी छटा जगतमें, प्रभाव बढ़ने लगा सवाया ॥ प्र०
चहक उठे हो प्रसन्न पक्षी, चली हवा पुष्पगन्ध लेकर ।
सुबहकी ठंडी हवाने आकर चँवर डुलाया, जगत जगाया ॥ अभी०

(प्रस्थान ।)

(घड़े लिये हुए दासियोंका प्रवेश ।)

१ दासी—सुना, रानासाहब कल बहुत खफा हुए थे ।

२ दासी—सो तो होंगे ही, सो तो होंगे ही ;–किस पर हुए थे ?

१ दासी—अपने मँझले लड़के पिरथीके ऊपर । और किस पर ।

२ दासी—सो तो होंगे ही । क्यों खफा हुए थे ?

१ दासी—सुनती हूँ, पिरथी छोटी रानीके कुँअर जयमलको तरवारसे मारने चला था ।

२ दासी—क्यों जी सचमुच ? मारने तो चलेहीगा—मारने तो चलेहीगा ।—मगर क्यों मारने चला था ?

१ दासी—यही भाई-भाईका झगड़ा है । इसके सिवा राना छोटे लड़केको अधिक चाहते हैं कि नहीं !

२ दासी—हाँ सो तो है ही—सो तो है ही । प्यारी रानीका लड़का है कि नहीं । इस तरहका क्यों न हो ? सतजुगसे ऐसा ही तो होता चला आता है । यह देखो, राजा युधिष्ठिरने अपनी प्यारी रानीके लड़के भरतके लिए दूसरी रानीके लड़के बलरामको वन भेजकर अपनी जानसे भी हाथ धोये थे । इस-तरहका तमाशा अब क्यों न होगा ?–लेकिन उसके लिए यों मारकाट न करनी चाहिए ।

१ दासी—मँझला कुँअर क्यों सहने लगा ?

२ दासी—सो तो सच है बहन । क्यों सहेगा ?—वह भी तो राजाका लड़का है, वह क्यों सहने लगा ?—लेकिन अब क्या होगा ?

१ दासी—रानाकी जैसी मर्जी है वैसा ही काम होगा ।

२ दासी—सो तो है ही । सो तो है ही । नहीं तो क्या मेरी मर्जीके मुताबिक काम होगा !—मगर मैं यह कह रही थी—

१ दासी—शायद राना के बाद छोटा कुअँर ही गद्दी पावेगा ।

२ दासी—यहाँ तक ! इसमें अब अचरज ही क्या है जी । सो तो हो ही सकता है । यह देखो न, रामचन्द्रके मरने पर उनका छोटा लड़का दुर्योधन हो तो राजा हुआ था । विधाता चाहे तो क्या नहीं हो सकता ?

१ दासी—विधाता नहीं री ! बल्कि कह कि छोटी रानी चाहे तो क्या नहीं हो सकता ?

२ दासी—वह एक ही बात है । मर्द के लिए प्यारी जोरू और विधाता एक ही चीज है ।

१ दासी—यह नहीं तो क्या ! देखो, रानाने बड़ी रानीकी लड़कीको एकदम पानीमें बहा दिया ! उसे एक बेवकूफ जानवरके हाथमें सौंप दिया है । उसकी दशा देखकर बुखार चढ़ आता है ।

२ दासी—बुखार तो चढ़ आवेगा ही—बुखार तो चढ़ आवेगा ही ।—मैं कहती हूँ, वह लड़की क्या सुसराल जा रही है ?

१ दासी—जा नहीं रही है तो क्या—लड़कीका ब्याह होता है बापके घर रहनेके लिए ? सुसराल क्यों न जायगी ?

२ दासी—सो तो जायगी ही । सो तो जायगी ही ।—आहा, बड़ी अच्छी सुन्दर लड़की है ।

१ दासी—रानाका दामाद उसे लेने आया है । अब उसके बिना गए बनता है ?

२ दासी—हाँ जी. कहीं बन सकता है ?

१ दासी—चल । और जरा तेज चल न । चलती है जैसे सारी मिट्टी माड़ती जा रही है । जैसे पेटभर खानेको नहीं पाती ।

२ दासी—वाह, यह क्या जी । क्या हम हवामें उड़ते-उड़ते फिरनेके लिए आई हैं ? यह होता तो मालिक हमें महीना देता ! —बोलो, क्यों जी ?

१ दासी—चल, चल, अभी चल ।

२ दासी—चलू न । धमका क्या रही है ?

(प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—अरावली पहाड़की तराईका गाँव ।

समय—तीसरा पहर ।

[शूरतान और उनकी रानी । कुछ दूर पर तारा पढ़ रही है ।]

शूर०—अभिनय अति अद्भुत विचित्र संसारका !
भाग्यचक्रका फेर ! चपल सौभाग्यको
लक्ष्मीकी लीला ! मनुष्य जो आज है
महाराज, कल वही हीन कंगाल है ।
यत्न व्यर्थ यह प्रिये ! भाग्यका खेल है ।

रानी—खेल ? भाग्यका ? कैसा ? यह कुछ भी नहीं ।
क्षत्रियपुत्री हूँ; न दैवको मानती ।
अपने पौरुषसे मनुष्य निजभाग्यको
गढ़ लेता है, मैं तो जानूँ बस यही ।

शूर०—गढ़ लेता है ! प्रिये, तनिक सोचो सही ।
विश्व-नियमकी धाराके प्रतिकूल हो

ठहर सकेगा कौन ? शक्ति इतनी नहीं।
चार ओर घटनाओंका भारी भँवर
खींच रहा है; क्षीण मनुजका बाहुबल
क्या कर सकता वहाँ अकेले प्रियतमे ?

रानी— क्या कर सकता ? कर सकता है युद्धको,—
कायर सैनिक सदृश भाग सकता नहीं
कर्मक्षेत्रसे।

शूर०— जो हारे संग्राममें ?

रानी— तो वीरोंकी तरह मरे लड़ता हुआ
आया यहाँ मनुष्य न तिनकेके सदृश
बहनेको, ले जाय लहर जिस ओरको।
जैसे जाती नाव विरुद्ध प्रवाहके
वैसे ही—हो अगर प्रयोजन तो—चलो।

शूर०—धीरे, धीरे, उतावली अच्छी नहीं।
तुम जो कहतीं वही ठीक जो मान लें,
तो फिर नल पर क्यों विपत्ति ऐसी पड़ी ?
राज्य गया, स्त्री छुटी, अंतको यह हुआ—
हुए सारथी महारथी ऋतुपर्णके।

रानी— इसमें किसका दोष ? उन्हींका दोष था।
अपनी इच्छासे अवैध खेले जुआ।
अपने हाथों आप कुल्हाड़ी मार ली
अपने पैरोंमें।

शूर०— विचार यह भूल है।
निज इच्छासे नहीं, दैवकी प्रेरणा
जो चाहे सो करे। घोर कलि—

रानी— कलि ? सुनो ।

छिद्र मिला तब तो प्रवेश कलिका हुआ ।
कलियुगको वह छिद्र दिया किसने ?

शूर०— प्रिये,

ऐसी बातें किया करो तुम किस लिए ?
दुःख यहाँ क्या तुम्हें ? रम्य यह स्थान है ।
अरावलीगिरिकी उपत्यका, जिस जगह
झरने झरझर झरें, स्वच्छ मीठा भरा
पानी, चारों तरफ खूब है अन्न भी,
बड़ा यहाँ आराम—न कुछ भी क्लेश है ।

रानी—सोनेका भी पिंजड़ा क्या बन्धन नहीं ?
निज इच्छासे वनमें रह कर भी सुखी
सोते हैं; पर पराधीन प्रासाद में
रहना है धिक्कारजनक सबके लिए ।

शूर०—प्रिये, आज तुम अपनेको भूली हुई
बातें करती हो; अयोग्य यह बात है ।
जो कुछ तुमने कहा, न वह पतिके लिए
हो सकता सम्मानजनक । यद्यपि लिखा
शास्त्रोंमें, जब राज्य युधिष्ठिरका गया,
वनमें जाकर बसे, द्रौपदीने कहे
थे तब ऐसे वचन !—सुना यह भी. कभी
भैरवसे भगवती लड़ी थीं । पर प्रिये,
तो भी यह मानना पड़ेगा सर्वथा
हिन्दूकुलकामिनी कठिन ऐसी नहीं—
ऐसी बातें कभी न उनको सोहतीं !

रानी—सच है ! रणमें पीठ दिखाना सोहता
क्षत्रियको ! तुम पुरुष विधाता बन गये;
सदा स्त्रियोंको अपने प्रति कर्त्तव्यका
देते हो उपदेश । न निजकर्त्तव्यको
आप पालते । स्वामी, तुम रणभूमिसे
भाग न आते अगर कायरोंकी तरह,
जो क्षत्रियकी तरह सामने युद्धमें
मरते, तो देखते, क्षत्रियोंकी स्त्रियाँ
कैसे होतीं सती वीर पतिके लिए—
चढ़ती मैं सानन्द चिता पर ।

शूर०— प्रियतमे,
मर जाता मैं तो फिर कैसे देखता
सती-धर्म सहमरण ? और जो मान लें
वह भी, तो भी उससे मुझको लाभ क्या ?
मैं जी जाता नहीं तुम्हारी मृत्युसे ।

रानी—क्षत्रिय होकर डरो युद्धकी मृत्युको !
तुमको है धिक्कार !—हाय धिक्कार है !

शूर०—और युक्ति यह सुनो प्रिय, जो युद्धमें
मर जाता है वीर न वह फिर रण करे ।
पर जो भागे, कभी युद्ध वह कर सके;
जय भी संभव ।

रानी— युक्ति सर्वथा है वृथा ।
कायरहीको युक्ति सैकड़ों सूझतीं ।
सच्चे हैं जो शूर, तर्क करते नहीं—
जयलक्ष्मीको प्राप्त करें, अथवा मरें ।

कन्या होती नहीं—पुत्र होता कहीं
मेरे !

शूर०— भ्रम होगया तनिक उसमें प्रिये ।
किसका उसमें दोष, न जानूँ; किन्तु जो
होता कोई पुत्र, भागता वह नहीं—
इसका ही क्या है प्रमाण ?

रानी— है क्यों नहीं;
होता नहीं सियार सिंहिनीके कभी ।

शूर०—अगर सिंहिनीका सियारसे ब्याह हो,
तो संभव भी है ।

रानी— न किया मैं चाहती
इस चर्चाको । (प्रस्थान ।)

शूर०— है स्वभाव नवनीतसा
प्यारीका । पर आज सुकोमल वह नहीं—
यह भी निश्चित । हाय विधाता कौनसी
सामग्रीसे स्त्रियाँ बनाई हैं सभी ! (प्रस्थान ।)

तारा—नारी हूँ ! धिक्कार !—मुझे धिक्कार है !
क्यों न हुई मैं सुत ? नारीके जन्मको
धिक है !—पर किस लिए ? स्त्री हुई हीन क्यों ?
गार्गी, लीलावती, सुभद्रा सुन्दरी,
सावित्री, दमयन्ती, सीता, रुक्मिणी,
सती आदि क्या स्त्रियाँ नहीं थीं जन्मसे ?
स्त्री अबला क्यों ? हाथ-पैर उसके नहीं ?
हृदय नहीं ? मस्तिष्क नहीं ? है क्या नहीं ?
शक्ति, तेज, बल, शिक्षासे—अभ्याससे—

होता, बढ़ता । देखूँ मैं क्या कर सकूँ ?
कमल–सुकोमल हाथ बना लूँ वज्र से।
लूँ इनमें मैं खड्ग खुला, देखूँ भला
कर सकती या नहीं ।–क्षोभ तुम कम करो
माता । गौरव गया हुआ लूँगी अभी।
राज्य शत्रुसे छीनूँगी छीना हुआ।
उज्ज्वल कुलको करूँ नाम तारा तभी ।
देखूँ, क्या कर सकूँ । अकेली बालिका,
तो भी लड़की राजपूतकी हूँ । मुझे
भय कैसा ? मैं पुत्र हुई यद्यपि नहीं
तो भी उसका काम करूँगी सर्वथा । (प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य

स्थान—वन, कुछ दूरी पर एक मन्दिर ।

समय—दोपहर ।

[हथियारबंद संग, पृथ्वी और जयमल शिकार से लौट रहे हैं ।]

पृथ्वी०—राह तो नहीं भूली ?

संग—ना । यह राह मैं जानता हूँ ।

जय०—तुम पहले इस राहसे आये थे क्या ?

संग—कई बार ।

जय०—कब ?

संग—परसों ही आया था ।

पृथ्वी०—क्यों ? यहाँ क्यों ? किसकी खोजमें ? क्या ढूँढ़ने ?

संग—एकान्त ।—

पृथ्वी०—एकान्त—सो तो घरमें ही मिल सकता है। आँख मूँद लेनेहीसे एकान्त होजाता है।

संग—और सन्नाटा।

पृथ्वी०—कानोंमें उँगली लगानेहीसे हो जाता!

[गाते गाते चारणी का प्रवेश ।]

संग—यह कौन है?

पृथ्वी०—वही तो! कोई जादूगरनी है क्या!

चारणी का गीत।

बिहाग—तिताला।

सामुहे पाछे अगम असीम—
अन्धकारकी रासि वही है उमही उत्कट भीम ॥स०॥
चिनगारीसम हम सब यांह अति अन्धकार के बीच--
मालुम नहीं, कहां से आवें; लावें कोई खींच ॥सा०॥
कितनी राह दिखावै—सो कुछ देख न पावैं हाय—
खोजत खोजत राह, बिलै हैं याई । महं धाय ॥सा०॥
सहस विराट मरनके देखो अन्धकारकी रासि—
करत मनों उपहास, दीपके पीछे, है अविनासि ॥सा०॥
सागरके हिलकोरन पृथ्वी टूक टूक ह्वै जाय;
छीन नछत्र दिगन्त-नीलिमा बिच डूबत असहाय ॥सा०॥

जय०—गाना भी गाती है।

पृथ्वी०—वही तो! लेकिन इसके गानेका कुछ अर्थ ही समझमें नहीं आता।

संग—अद्भुत है! इस निर्जन वनभूमिमें अकेली फिरती है!

जय०—कौन है तू?

पृथ्वी०—हाँ, ठीक बता कौन है तू?

संग—कौन हो तुम मैया ?

चारणी—मैं वनमें विचरनेवाली तपस्विनी हूँ।

पृथ्वी०—तपस्विनी ? यह कहीं हो सकता है ?

चारणी—क्यों नहीं हो सकता बेटा ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है।—क्यों नहीं हो सकता, सो तो समझमें नहीं आता।

जय०—ना ना, ये सब चोर हैं। दिनको तपस्विनी बनकर घूमती हैं, रातको चोरी करती हैं।

पृथ्वी०—ठीक है! जरूर यह चोर है। दिनको तपस्विनी बनकर घूमती है।

चारणी—इस तरहकी चोर तपस्विनी कितनी देखी हैं बेटा ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है—इस तरहकी चोर तपस्विनी मैंने तो शायद अपने होशमें कभी कोई नहीं देखी।

जय०—तो यह फकीरिन है।

पृथ्वी०—बेशक फकीरिन है! मैं भी यही सोच रहा था। फकीरिन है। जरूर फकीरिन है।

चारणी—बताओ बेटा, फकीरिन वनमें क्या करने के लिए रहेगी ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है; वनमें भीख ही कौन देगा ? तो फिर तुम कौन हो, खुलासा करके कहो न !

चारणी—मैं चारणी हूँ।

संग—आप चारणी हैं ? यहाँ क्या आपका आश्रम है ?

चारणी—यहाँ नहीं है। लेकिन बहुत दूर भी नहीं है। पास ही मेरी माताका मन्दिर है।

संग—हाँ, चाचाजीके मुँहसे एक दिन आपका हाल सुना था।

जय०—वही है!—आप हाथ देखना क्या नहीं जानतीं?

चारणी—(हँसकर) कुछ कुछ जानती हूँ।

पृथ्वी०—आप आगेका हाल बता देती हैं? अच्छा, बताइए, हम तीनोंमें मेवारका राना कौन होगा?

चारणी—(कुछ देर चुप रहा कर) संग मेवारका राना होगा।

(गीत गाते गाते चारणीका प्रस्थान।)

पृथ्वी०—झूठ!—बनी हुई है!

जय०—लेकिन उसने नाम किस तरह जान लिया?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है! तो जान पड़ता है; उसने ठीक ही कहा है!

जय०—(चिन्ताके भावमें) वही तो! चलो घर चलें। देर होगई।

संग—(स्वगत) मैं विश्वास नहीं करता कि मनुष्य होनीकी बात बता सकता है। और बता सकता तो 'होनी' और भविष्यद्वादका खण्डन किया जा सकता। अगर वह हो सकता है, और नहीं भी हो सकता, तो उसे यह आगेसे किस तरह बता दे सकती है?—पहेली पहेली—सब—पहेली है।

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—सूर्यमलके घरका अन्तःपुर।

समय—तीसरा पहर।

[सूर्यमल अकेले खड़े हैं।]

सूर्य०—कानोंमें है गूँज रही तो भी वही
विकट पहेली सी भविष्य-वाणी अहो!—
मैं पाऊँगा राज्य। बुझाना चाहता

दुस्साहसकी इच्छासे इस अग्निको ।
वैसे ही यह रानी तमसा, मन्थरा।
ऐसी, कौशल–कुटिल युक्तियोंका घना
ईंधन डाले ।–नहीं नहीं, संभव नहीं !
करूँ न ऐसा पाप । वृद्ध हैं रायमल ।
रखते मुझ पर स्नेह और विश्वास भी ।
सेनापति कर दिया मुझे । उनसे करूँ
मैं ऐसा विश्वासघात ! होना नहीं !–

(नेपथ्यमें आभूषणोंकी ध्वनि ।)

यमुना है आ रही, है जा रही अभी
अपने पतिके घरको । मिलने के लिए
आई है ।

[यमुनाका प्रवेश ।]

यमुना— तुम यहाँ चचाजी ! मैं विदा
होती हूँ ।

सूर्य०— क्या अभी ?

यमु०— हाँ अभी जा रही;
दो शुभ आशीर्वाद ।

सूर्य०— सदा सुखसे रहो ।
जाओ बेटी अपने स्वामीके भवन ।
गुरुजनसेवापरायणा रहना सदा,
पतिव्रता, सर्वथा कुटुंबहितैषिणी ।
बेटी, रो मत ।

यमु०— नहीं, न रोऊँगी चचा !
क्या जानें, क्यों रोनेको जो चाहता ।

ऊधम किए अनेक, खिझाया आपको
मैंने अब तक। क्षमा कीजिएगा चचा !

सूर्य०—यमुना, मेरे कन्या कोई भी नहीं !
अपनी लड़की समझ तुझे पाला किया
अबतक। अबसे बेटी, कन्या-स्नेहके
सुखसे वंचित यह तेरा चाचा हुआ।
बेटी यमुना, आज सुदिन शुभलग्न में
जाओ तुम ससुराल। निज भवन है वही
स्त्रीका यह पर-भवन पिताका गेह है।
जाओ अपने यहाँ जिस तरह पार्वती
परिणयके उपरान्त गईं कैलासको।
मेरी यही असीस, प्यार पतिका मिले !
गौरवका सौभाग्य सुलभ हो सर्वदा।
पति जो रूखे वचन कहे लगते हुए,
तुम कहना प्रियवचन। अगर स्वामी लड़े
तो सहना चुपचाप; बुरा मत मानना।
सतियोंका सर्वस्व परमगति पति सदा।

यमु०—चाचाजी, मेरा प्रणाम स्वीकार हो।
जाती हूँ।

सूर्य०— सुख आयु बढ़े।

(यमुनाका प्रस्थान।)

सूर्य०— हा खेद है !—
लक्ष्मी सी यह लड़की उस चांडालको
भैयाने दी सौंप; पिन्हा दी कंठमें
बन्दरके मणिमाला ! पाभूरावहा !

अगर जानता मूल्य कहीं इस रत्नका !—
सिर पर रखता इसको, ठुकराता 'नहीं
पैरोंसे ! (दूरपर कहारोंका शब्द ।)
वह मेरी बेटी जा रही
शिविका पर । ओ निठुर बालिका, छोड़कर
मुझे कहाँ जारही ?

[तमसाका प्रवेश ।]

तमसा— गई यमुना ?
सूर्य०— गई !
चला गया दिन, अन्धकार घरमें हुआ !
तम०—किसके कारण व्यग्र और व्याकुल रहो—
आँसू बरसें ? क्यों इन गैरोंके लिए
व्याकुल होते ? समझ न पड़ता कुछ मुझे ।
सूर्य०—समझ सको क्या ? हाय, तुम्हारा है नहीं
उससे कुछ सम्बन्ध रक्तका—गोदमें
लेकर पाला नहीं उसे ।

[दूरपर संगका तेजीसे प्रवेश ।]

तम०— जाते कहाँ
संग कुअँर तुम ?
संग— वैद्य बुलाने ।
तम०— क्यों ?
संग— पिता
पीड़ित पड़े अचेत ।
तम०— किस तरह ? क्या हुआ ?

संग—कहता हूँ; मैं प्रथम बुला लूँ वैद्यको। (प्रस्थान।)

सूर्य०—जाऊँ देखूँ,— (प्रस्थान।)

तम०— ईश्वर, बस हो यह वही

मूर्च्छा, होती दूर नहीं जो—

[सारंगदेवका प्रवेश।]

सारंग०— आपने

बुलवाया था मुझे ?

तम०— कौन ? सारंग ? हाँ,

बुलवाया है मैंने ही।

सारंग०— क्यों ? किस लिए ?

तम०—मतलब है। सारंग, कहूँगी; स्थिर बनो।

पर पहले यह करो प्रतिज्ञा—तुम कहीं

प्रकट करोगे नहीं, कहूँगी जो, उसे।

सारंग०—व्यर्थ प्रतिज्ञा। क्या तुम यह जानो नहीं,

आज्ञाकारी सदा तुम्हारा दास हूँ ?

तम०—मुझको है मालूम, मगर तो भी अभी

करो प्रतिज्ञा। बड़ा कठिन आदेश है।

सारंग०—तो फिर कह दो प्रथम, कौन आज्ञा करो,

कर सकता हूँ तभी प्रतिज्ञा।

तम०— अन्यथा

कहा करोगे नहीं ? न खाओगे कसम ?

तुम्हें स्मरण है, उस दिन, प्रातःकालमें,

गंभीराकी रेतीमें, भूखे, विकल,

पहने कपड़े फटे, शीतसे काँपते,

भीख माँगते देख तुम्हें, आई मुझे
दया । याद है तुम्हें ?

सारंग०— याद है सब मुझे ।

तम०—तुमको सादर लाई मैं चित्तौरमें—
भर्ती करवा दिया फौजमें । याद है ?

सारंग०—खूब याद है ।

तम०— सुनो, इसीसे आज तुम
सेनापति हो । पैदलसेना पाँच सौ
है अधीन ।

सारंग०— हाँ माता तुम हो धर्म की ।
मुझे बचानेवाली हो ।

तम०— तो बस करो
अभी प्रतिज्ञा यही कहूँगी जो उसे
पूर्ण करोगे चुपके, कुछ पूछे बिना ।

सारंग०—यही प्रतिज्ञा करता हूँ ।

तम०— आओ चलो (प्रस्थान ।)

छठा दृश्य ।

स्थान—सिरोही राज्य । पाभूरावका विलासभवन ।

समय—रात ।

[मुसाहबों सहित पाभूराव ।]

मुसाहबोंका गीत ।

गजल ।

छनी है भंग; उसका रंग आंखों बीच आया है ।
नशेमें चूर हैं; भरपूर विजयाने छकाया है ॥

दो० । बैठे सुनते रातदिन कानोंही के पास—
बजती जैसे वीन है; बढ़ता है उल्लास ॥
सदा घोटो, सदा छानो, यही जीमें समाया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । कैसी इसकी सिद्धि है! हम सबही सशरीर—
चले जा रहे स्वर्गको, जैसे कोई वीर ॥
इसे जो 'सिद्धि' कहते हैं, उन्होंने तत्त्व पाया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । पीते जो गाँजा चरस, वे हैं अर्वाचीन ।
सस्ती हो विजया; वही है सबसे प्राचीन ॥
सभीसे है सरस मीठी, इसीको मुह लगाया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । हीरोंमें जैसे बड़ा कोहनूर, त्यों भंग,
सभी नशोंमें श्रेष्ठ है; इसकी नई उमंग ॥
इसे तो सोमरस ही आजकल सबने बताया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । लिखा पुराणोंमें, स्वयं भोला खाते भंग ।
—खाते हों तो हम करें चलकर उनका संग—
स्वयं या व्यासने ही भंग खाकर सब बनाया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । जगते जगते नादका कैसा होता स्वाद ।—
भंग-भवानी-भक्त ही रख सकता यह याद ॥
हरेक झोका इसीकी मौजका आना सुहाया है ।
छनी है भंग० ॥
दो० । बहुत अगर पी लीजिए, तो करती है तंग ।
इससे थोड़ी ही पियो सदा रसीली भंग ॥

हँसो हः-हः करो हीं-हीं, यही सुख मनको भाया है ।
छनी है भंग० ॥

दो० । जो फकीर भी भंगको छाने नित कर चाह ।
वह अपनेको जानता दुनियाभरका शाह ॥
सभी हैं तुच्छ यह सबको सबक इसने पढ़ाया है ।
छनी है भंग० ॥

पाभू०—देखो—

मुसा०—देखो देखो—

पाभू०—मैं पाभूराव—

मुसा०—(दीनभावसे) यह पाभूराव—

पाभू०—सिरोहीका राजा हूँ ।—

मुसा०—(तद्रूप) हाँ—

पाभू०—इतना ही काफी है ।

मुसा०—और चाहते क्या हो ?

पाभू०—तो फिर लोग कहते क्यों हैं—

मुसा०—(तद्रूप) ठीक है ।

पाभू०—कहते क्यों हैं कि "मैं क्या हूँ ? रायमलका दामाद ही न !"—कहते क्यों हैं ?

मुसा०—(तद्रूप) कहते क्यों हैं ?

पाभू०—बल्कि कहना चाहिए कि "रायमल क्या है ? पाभूरावका ससुर ही न !"

मुसा०—(तद्रूप) पाभूरावका ससुर ही न !

पाभू०—देखो सब मुसाहबो ! तुम बिलकुल निकम्मे होते जा रहे हो । खुशामद करते हो, सो भी उत्साहके साथ नहीं कर

सकते ? मैं जो कहता हूँ वही दोहराते जाते हो !—इससे जी खुश नहीं होता।

मुसा०—ठीक ! इससे जी खुश नहीं होता !

पाभू०—देखो, अबकी मैं जिस औरतको ब्याह कर लाया हूँ वह वज्र गूँगी है।

मुसा०—(कुछ कुछ उत्साहके साथ) वज्रगूँगी ! एकदम गूँगी !

पाभू०—मगर सुन्दरी है—एकदम साक्षात् अप्सरा है, केवल नाचती नहीं—यही ऐब है !—

मुसा०—(तद्रूप) हाँ—यही ऐब है। नाचती नहीं, यही ऐब है—

पाभू०—फिर !—मैं कहता हूँ कि फिर अगर इस तरह 'टुप'-से बोलकर टाल देनेकी चेष्टा करोगे तो काम नहीं चलेगा !—समझ रक्खो !

मुसा०—(उत्साहके साथ) समझ रक्खो !—काम नहीं चलेगा समझ रक्खो।

पाभू०—औरत है कि साक्षात् विद्याधरी है।—साक्षात् !—

(मुसाहबोंमेंसे किसीने 'साक्षात्' कहा, किसीने चुटकी बजाई और किसीने मटक दिया।)

पाभू०—बहुतसी औरतें देखी हैं—मगर मेरी यमुना एकदम—

(मुसाहबोंने तरहतरहके इशारोंसे श्रेष्ठताका भाव प्रकट किया।)

पाभू०—देखनेमें कैसी है—जानते हो ?—जैसे-जैसे—बिनादेखे ठीक समझमें नहीं आ सकता।

मुसा०—सो ठीक है !—बिना देखे समझमें नहीं आ सकता !

पाभू०—देखोगे। अच्छा तुम लोगोंको दिखाता हूँ।—ए चोपदार !

मुसा०—चोपदार ! चोपदार !

चोप०—(प्रवेश करके) महाराज !

पाभू०—अभी मेरी रानीको यहाँ ले आ। खड़ा मुँह क्या ताक रहा है !—जा !

१ मुसा०—(विशेष उत्साहसे) जाता है क्यों नहीं रे !

चोप०—यहाँ राजा साहब ?

पाभू०—यहाँ नहीं तो कहाँ ! नहीं क्या वहाँ !

२ मुसा०—(तद्रूप)—नहीं तो क्या वहाँ ? हूँ:—

पाभू०—कहो, राजा साहबकी आज्ञा है ।

३ मुसा०—(तद्रूप) हाँ आज्ञा है !

[विस्मित होकर चोपदारका प्रस्थान ।]

पाभू०—लेकिन वह मुझे बहुत मानती है—

मुसा०—जरूरतसे ज्यादह !

पाभू०—जैसे—(बहुत सोचकर) बिलकुल जैसे—कुत्ता !—

मुसा०—हाँ, ठीक ! जैसे कुत्ता !

पाभू०—फिर ! देखो कहे देता हूँ, यों करने से काम नहीं चलेगा । काम नहीं चलेगा ।

मुसा०—ना ना ना । काम नहीं चलेगा ।—कहे देता हूँ—

[बुढ़िया दासीके साथ यमुनाका प्रवेश ।]

पाभू०—यमुना आगई ?

यमुना—(चोपदारसे) मुझे यहाँ क्यों ले आया ?

बुढ़िया—हाँजी ! सच तो है ! हम लोगोंको यहाँ क्यों ले आया ? मैं कहती हूँ ओ दरोगा—मैं कहती हूँ—ओ—

पाभू०—तू बुढ़िया जा !

१ मुसा०—हाँ तू बुढ़िया जा—

बुढ़िया—क्यों ? मैं क्यों जाऊँ ?

२ मुसा०—इस दरबारमें तेरा कुछ काम नहीं बुढ़िया ।

३ मुसा०—हाँ बुढ़िया ! "वृद्धस्य वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते" लिखा अवश्य है । किन्तु सर्वत्रैव इस तरहके विचारसे तो काम नहीं चल सकता बाबा ।

पाभू०—घूँघट तो मुँहपरसे हटाओ प्यारी !–(अपने हाथसे यमुनाका घूँघट खोलकर) देखा चेहरा ?–यमुना !–प्राणेश्वरी ! एकबार मेरे पास खड़ी तो हो जाओ प्यारी ! जरा ये लोग देख तो लें कि तुम मेरी बगलमें कैसी अच्छी लगती हो ।

बुढ़िया—ये कौन हैं ।

पाभू०—ये चाहे जो हों, तेरा क्या ? निकल जा यहाँसे ।

मुसा०—(साथ ही साथ) निकल हरामजादी ।

यमुना—मुझे यहाँसे ले चलो !

बुढ़िया—सच तो है ! यहाँ क्यों ले आया ! मैं कहती हूँ ओ कलमुहे !–(चोपदारको धक्का देना ।)

चोप०—अः धक्का क्यों देती हो ?

पाभू०—यमुना ! जरा मेरे पास आकर खड़ी होजाओ ।--नहीं तो जाने न दूँगा ।

बुढ़िया—अच्छा जरा बाईं तरफ खड़ी हो जा बेटी ! नहीं तो जान न बचेगी ।

(बुढ़ियाके कहनेके अनुसार यमुना पाभूरावके बाईं ओर खड़ी होती है ।)

पाभू०—(मुसाहबोंसे) कहो ? कैसी अच्छी लगती है, कहो न।
मुसा०—वाह वाह; कैसी अच्छी लगती है—

गान।

मुसाहबोंका गान।

तर्ज थियेटर।

आहा कैसी अच्छी जोड़ी;
ओहो कैसी अच्छी जोड़ी ॥ आहा० ॥
जैसे काबुलका हो गदहा
उसके पास अरबकी घोड़ा ॥ आहा० ॥
घनकी गोद इन्द्रधनु जैसे,
कृष्णपास बलदाऊ तैसे,
नाच संग तबलेकी चाटी,
मीठे सग नमकीन कचौड़ी ॥ आहा० ॥
मदिरा साथ हरि-भजन जैसे,
पके आम संग दूध पकाया,
लैया साथ भुने पापड़ ज्यों,
हो अफीम के संग ज्यों रबौड़ी ॥ आहा० ॥
ज्वरके संग विसूचिका जैसे,
ब्याह संग ज्यों रोशनचौकी,
मरणकाल सँग रामनाम--रट,
वैसी-वैसी है यह जोड़ी ॥ आहा० ॥

(सबके आगे पाभूराव, यमुना, बुढ़िया दासी, उनके पीछे मुसाहबलोगों-का गाते गाते जाना।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—अंतःपुर।

समय—आधी रात।

[पलंग पर राना लेटे हुए हैं। संग, पृथ्वीराज और जयमल उनके पास बैठे हैं।]

राय०—कितनी अब है रात संग?

संग— बारह बजे।

राय०—तब भी बैठे हुए यहाँ तीनों जने!—
इतनी बीती रात! उठो, बस हो चुका!
पृथ्वी, बेटा जयमल, जाओ, सो रहो।
जागोगे कब तलक! सभी तुम एक से
भक्त पिताके, यह निश्चय मैं जानता।
पुत्र संग, तुम बैठो; आवे नींद जब
तब तुम जाना; फिर जयमलको भेजना,
या पृथ्वीको।—यह क्या! जाते क्यों नहीं?

पृथ्वी०—पूज्य पिता, मैं थका नहीं।

जय०— जब आप यों
रोग भोगते पड़े पलँग पर हैं, भला
तब हमको सुख—नींद किस तरह आसके?

राय०—धन्य पिताकी भक्ति!—कहा करता सदा
शूरतान यों, "इस जगमें बिलकुल नहीं
स्नेह, दया या ममताका लवलेश है।
मतलबके ही यार सभी; सब धूर्त हैं।"

जान पड़ा. थी मिथ्या उसकी धारणा।
जयमल-जल, (जलपान) लग रही मुझे सर्दी बड़ी
शीत बढ़ रहा! यह क्या! ज्वरसा चढ़ रहा!
वैद्य बुलाओ संग!—नहीं, ठहरो--नहीं।
नहीं दवाका काम। दवा—क्या काम है।—
दवा मिटावे रोग? न खाऊँगा दवा!
दवा करूँगा नहीं!—आग सी लग रही
हृदय बीच! यह कैसी--कैसी है जलन!

पृथ्वी०—जल दो; संग!—नहीं—चाहिए नहीं--
जाने दो।—आ रही नींद।—सब देह ज्यों
शिथिल हो रही। अहो, यही क्या मौत है!
इतनी—ऐसी—स्निग्ध—शान्ति-सुख-दायिनी!
यह विषादकी तरह लिपटती गर्म इन
अंगोंसे।—आरही नींद (निद्रा)

पृथ्वी०—(देरतक चुप रहकर) जयमल! पिता
शायद जीवित नहीं।—नींद यह है वही
जो खुलती ही नहीं।—जरा देखो!

संग— कहो—
लाऊँ जाकर वैद्य।

जय०— वैद्यका काम हो
क्या है? नाड़ी देख जान लूँगा अभी—
अटकल मुझको है।

संग— विलम्ब फिर क्यों करो—
देखो नाड़ी।

जय०—(नाड़ी देखकर) सच, दादा, नाड़ी नहीं।

पृथ्वी०—ठीक कहा था मैंने !

जय०— सारे अंग तो

ठंडे हिमसे हुए; मृत्यु निश्चय हुई ।

संग—चलती है कुछ साँस ?

जय०— साँस ही अब कहाँ ?

प्राण नहीं—सब स्तब्ध—

पृथ्वी०— करोगे, क्या, कहो ?

जय०—तो समझूँ क्या राना अबसे संगको ?

पृथ्वी०—राना है बस वही, रखे तरवारका

बल जो सबसे अधिक—अभी इस बातका

हो जावे फैसला ।—संग ! तरवार लो ।

संग—पृथ्वी ! यह क्या ! सिड़ी हुए हो क्या !

पृथ्वी०— नहीं,

खींचो बस तरवार ।—अभी हो फैसला—

राना होगा कौन राज्य मेवारका ।

संग—मुझे नहीं पर्वाह, न चाहूँ राज्य मैं ।

पृथ्वी०—राज्य न चाहो !—ऐसी छोटी बातको

सुनना मैं चाहता नहीं ।—सब झूठ है !

राज्य न चाहो ?—लो जल्दी तरवार लो ।

संग—सच कहता हूँ पृथ्वी ! मुझको राज्य यह

नहीं चाहिए । तुम, अथवा जयमल, इसे

भोग करो ।

पृथ्वी०— वह बात चारणीकी तुम्हें

भूल गई क्या ?—"राना होंगे संग ही !"

मैंने भी उस समय कहा था—"होयगा
राना पृथ्वीराज"। परीक्षा हो अभी—
बड़ा बाहुबल, या दैवज्ञ-विचार है।
लो बस लो तरवार-वार मेरा सहो।
आज तुम्हारे अथवा मेरे रक्तसे
तर होगी यह भूमि।

संग— कहो क्या? मैं करूँ

युद्ध राज्यके लिए पिताकी लाश पर?
ठहरो भाई! राज्य न मैं चाहूँ।—सुनो,
पृथ्वी! है यह राज्य तुम्हारा!—मैं कसम
खाता हूँ,—यह राज्य न मुझको चाहिए।

पृथ्वी०—कुछ न सुनूँगा मैं; जल्दी तरवार लो।

(पृथ्वी का तरवार लेकर संग पर आक्रमण करना और संग का तरवार खींचकर अपनी रक्षा करना।)

संग—ठहरो, क्या कर रहे! सुनो पृथ्वी—सुनो।

पृथ्वी—कायर! है धिक्कार! डरो यों मृत्युको!
इतना डरते!—सभी मरेंगे एक दिन।—
इतना डरते! लड़ो—बचोगे यों नहीं।

(फिर आक्रमण करना और संग का आँख में घायल होना।)

संग—ठहरो-ठहरो, कठिन घाव मेरे लगा।

पृथ्वी०—युद्ध करो—बस युद्ध; सुनूँगा कुछ नहीं।
जीता छोड़ूँ नहीं आज तुमको।

[दोनोंका युद्ध । सूर्यमलका प्रवेश ।]

सूर्य०— अरे
यह क्या ! यह क्या ! युद्ध भाइयोंका ! यहाँ !!—
रुग्ण पिताके शयन-गेहमें !!! बस रुको !
ठहरो पृथ्वी !

(दोनोंका रुक जाना ।)

[रानाका उठ बैठना ।]

पृथ्वी०— यह कैसा आश्चर्य है !
उठ बैठा मृत !!!

राय०— मृतक नहीं । मैं तो अभी
मरा नहीं हूँ । इसी बीचमें गिद्ध या
मांसाहारी श्वान श्रृगालोंकी तरह
छीना-झपटी शव लेकर करने लगे ?—
भक्त पिताके बहुत बड़े तुम लोग हो !
समझ न पड़ता मुझे, स्वप्न या सत्य है !—
पृथ्वी ! जयमल ! संग !—अरे यह क्या ! तुम्हें
इतनी जल्दी ? ठहर सके दम भर नहीं ?
कर लेते तुम मृतका अन्तिम कर्म तो !—
साधारण जो मूर्ख कहाते हैं कृषक
उनको भी संकोच—शीलका ज्ञान है ।—
तुमको है धिक्कार ! (लंबी सास लेकर) पिता सब मूर्ख हैं ।
सन्तानोंके सुख पानेको जन्मभर
नींद-भूख सब छोड़ यत्न करते रहें ।
किन्तु पिताकी ओर उठाकर आँख भी

नहीं देखते पुत्र दुःख-आपत्तिमें !—
दुःख उठाकर पिता जमा जो धन करे
उसे उड़ाते सुखसे ! हा—धिक्कार है !
जयमल ! पृथ्वी ! संग ! अरे यह क्या—

जय०— पिता,
युद्ध न मैंने किया।

राय०— सत्य है ! सत्य है !
युद्ध न तुमने किया। किन्तु पृथ्वी !—किया
तुमने क्या !

पृथ्वी०— अपराध हुआ मुझसे पिता,
क्षमा कीजिए !

राय०— क्षमा न कर सकता कभी।
साधारण अपराध नहीं है; यह बड़ा
भारी है अपराध। नहीं इसकी क्षमा।

पृथ्वी०—पैरों पड़कर क्षमा-प्रार्थना मैं करूँ।
पछतावा है बड़ा—क्षमा कर दीजिए।

राय०—ऐसे ही आचरण तुम्हारे नित्य मैं
देखा करता।—जयमल पर, उस दिन, सुना
तुमने ले तलवार किया था आक्रमण।
महल, डाकुओंका अड्डा है यह नहीं।
तुमने यह अपराध बड़ा भारी किया—
देशनिकालनेका देता हूँ दण्ड मैं !
छोड़ो बस मेवार-राज्य—चाहे जहाँ
जाओ। अपना राज्य बाहुबलसे कहीं
अलग बसाओ। जाओ, छोड़ो राज्य यह।

सूर्य०—रानाजी !—

राय०— चुप रहो सूर्यमल ! हो चुका ।

मेरी आज्ञा कठिन 'नियति'के तुल्य हैं ।—

टल न सके वह और न कोमल हो सके ।

पृथ्वी—जाओ । (सिर झुकाये हुए पृथ्वीराजका प्रस्थान ।)

—और संग तुम ?

सूर्य०— संग ! मैं

धीरे, शान्त, स्थिर तुम्हें जानता था; मगर

तुम भी यों उन्मत्त हो गये ?

राय०— सूर्यमल,

ठहरो ।—बोलो संग, किया यह आज क्या ?

—फिर भी चुप हो ?—तुमको कुछ कहना नहीं ?

संग—कुछ भी कहना नहीं ।

सूर्य०—(आश्चर्यके साथ) संग !

राय०— समझा अहो,

लालनपालन इतने दिन मैंने किया

जो कुछ, सो सब व्यर्थ गया—ज्यों राखमें

आहुति डाली; अथवा उससे भी अधम—

पाला विषधर दूध पिलाकर गोदमें !—

यह उत्तम है ! उत्तम है ! दो पुत्र यों

रुग्ण पिताके पलँग—पास बैठे हुए

देख रहे थे राह, मरेंगे कब पिता !

मरा जानकर उसे, वहीं पर राज्यके

पानेको विग्रह-विवाद करने लगे ।—

योग्य यही प्रतिदान पिताके स्नेहका !

जो सोचा हो तुमने, मेरा स्नेह यह
धो डालेगा सभी तुम्हारी कालिमा;
ढकदेगा सब घाव; किये अपराधको
क्षमा करेगा; तो तुमको धोखा हुआ ।
स्नेह, स्निग्ध जलधारा बरसाता सही;
किन्तु वही फिर वज्रपात भी कर सके !
सुनो संग—यह राज्य तुम्हें मिलना नहीं,
राना होगा जयमल । देखो सूर्यमल !—
अभी राज्यमें कर दो इसकी घोषणा ।

(फिर सो रहना ।)

(पर्दा गिरता है ।)

दूसरा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—रानाका अन्तःपुर ।

समय—दोपहरके लगभग ।

[आधे लेटे हुए राना । सामने सूर्यमल ।]

राय०—पाया कुछ भी पता न तुमने संगका ?

सूर्य०—रानाजी कुछ नहीं—एक नौकर अभी
लाया चिट्ठी एक संगके हाथकी—

राय०—देखूँ चिट्ठी (लेकर पढ़ना)—मन्त्रीजी इसको पढ़ो !
पढ़ न सकूँ मैं, क्षीण दृष्टि मेरी हुई ।

सूर्य०—महाराज जो आज्ञा (लेकर पढ़ना)—इसमें संगने
लिखा—"श्रीचरणमें प्रणाम है कोटियों ।
मैं जानूँ, विश्वास पिताको है यही—
'मुझे राज्यकी चाह'; 'राज्यहीके लिए
जीवन्मृत रोगार्त्त पिताके पास मैं
पृथ्वीसे लड़ पड़ा'; 'राज्यहीके लिए
करता हूँ विद्रोहमन्त्रणा'; 'सैन्यको
देता हूँ उत्कोच'—यही उनसे कहा
जयमलने । जाता हूँ इससे आज मैं
राज्य छोड़कर । राज्य न मुझको चाहिए—
कई बार कह चुका पिताके सामने ।

पर, उनको विश्वास नहीं इसका हुआ ।
आशा है विश्वास आज होजायगा ।
पूज्य चचाजी, जो कुछ हो मैंने किया
अनुचित या अपराध, क्षमा कर दीजिए ।—
श्रीचरणोंमें करूँ यही बस प्रार्थना ।
—भाई जयमल ! आज तुम्हारी राहका
कण्टक भी कट गया, मिटी आपत्ति सब ।"

राय०—यह अच्छा है ! सूर्य ! यही प्रतिदान बस
अच्छा है । हे ईश्वर ! मैं तो यह कहूँ—
पुत्र न हो, हे ईश, शत्रुके भी कभी ।—
जाने दो । जो होना था सो हो गया ।—
जाने दो, बस द्वार बन्द कर लो सभी !
अति उत्तम है !—जाओ भाई ! मैं बहुत
थका हुआ हूँ ।—सोनेको जी चाहता ।

(सूर्यमलका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—बिदौर ।

समय—तीसरा पहर ।

[शूरतान और उनकी रानी ।]

शूर०—रानी ! तारा कहाँ गई ?

रानी— वह तो गई
है शिकारको, सब शिकारियोंके सहित ।

शूर०—है बालिका विचित्र—

रानी— बालिका अब नहीं
है वह । हुई जवान । शीघ्र उसके लिए
वर ढूँढ़ो ।

शूर०— वर कहाँ ?

रानी— सदासे तुम स्वयं
उदासीनसे रहते हो हर काममें ।

शूर०—'उदासीन ?' इस पृथ्वीके ऊपर, प्रिये,
सब विपत्ति-बाधा विघ्नोंके बीचमें,
उदासीनता ही यथार्थ सन्धान है ।

रानी—कैसे ?

शूर०— 'कैसे ?'-कार्य करोगे ही नहीं,
भ्रम होनेको कोई भी संभावना
नहीं रहेगी । कार्य करोगे जो, तभी
होसकता भ्रम ।

रानी— युक्ति तुम्हारी यह नई
नहीं समझमें आती ।

शूर०— आती ही नहीं ?
—अच्छा तो फिर सुनो । —जगतमें सर्वदा,
चार ओरसे तुमको घेरे शक्तियाँ,—
जिनमें कुछ प्रतिकूल और अनुकूल भी
अथवा हैं समकूल,—परस्पर वे सभी
संपेषण संघर्षण करतीं । बीचमें
बैठ रहो जो केन्द्र-सदृश तो डर नहीं ।
जहाँ केन्द्रसे डिगे वहाँ बस तुम गये—
घूम घूम कर मरो जगतके फेरमें ।

रानी—कैसे ?

शूर०— जैसे किसी पुरुषके दो स्त्रियाँ
हों। वे सौतें सदा कलह करती रहें।
अलग खड़े हो देखो जो, तो डर नहीं।
अगर किसीका पक्ष लिया, या कुछ कहा,
तो निश्चय है घोर विपदका सामना।—

रानी—हा धिक्। तुम इस सचल विश्वके बीच, यों
बैठ रहोगे निरुद्योग जड़ जीव से ?

शूर०—उस पर है विश्वास हृदयसे यह मुझे—
जो 'होनी' है वह अवश्य होगी; उसे
कोई भी अन्यथा न कर सकता प्रिये।

रानी—यह अच्छी है युक्ति।—कानमें डालकर
उँगली बैठे रहो निकम्मे भावसे—
निरुद्वेग हो—कार्यशून्य हो—

शूर०— होसके
जहाँ तलक। क्यों शक्ति खर्च करना वृथा ?
बैठे बैठे बल्कि शक्ति-संचय करो।

रानी—खर्च करोगे कभी नहीं, तो किस लिए
संचय करना ?

शूर०— प्रिये, सरल उतना नहीं
दर्शन-शास्त्र-विचार, सरल जितना उसे
तुम समझो। वह नारीके मस्तिष्कमें
शीघ्र न आता। थोड़ी शिक्षा चाहिए।

रानी—दर्शन-शास्त्र न जानूँ; उसको जानना
भी न चाहती।

[हथियारबंद पुरुषके वेषमें ताराका प्रवेश ।]

तारा— देखा है तुमने पिता ?

शूर०—क्या देखा है तारा ?

तारा— बच्चा बाघका ।

शूर०—लाया उसको कौन यहाँ ?

तारा— वनसे, उसे,
झाड़ीमें घुस बाघिनकी ही गोदसे,
लाये हैं हम छीन शिकारी सब यहाँ ।

शूर०—लाये हो तो बड़ी भूल की है । अभी
उसे खोजती बाघिन आवेगी यहाँ ।
लिखा शास्त्रमें, जिसका बच्चा छिन गया;
वह बाघिन है महाभयंकर; प्राणका
मोह छोड़कर, पागलसी होकर, फिरे
आसपासके जंगलके मैदानमें ।
आवेगी वह अभी, और या द्वार पर
खड़ी हुई ही होगी ।

तारा— आवे, डर नहीं ।
भुजबलसे मैं अभी पटक दूँगी उसे—
लूँगी उसकी जान ।

शूर०— मान लूँ किस तरह ?
बातें ऐसी हैं अनेक, कहना जिन्हें
बहुत सहज है—पर, करना है अति कठिन ।
युद्ध करोगी बाघिनसे ?

तारा— क्या कर सके
बाघिन मेरा ?
शूर०— यद्यपि बाघिनकी प्रकृति
सिर्फ सूँघना—सुना, किन्तु वह कार्यतः
करती उससे अधिक। लोग भी यों कहें—
बाघोंको नर-मांस बहुत प्यारा लगे
सब मांसोंसे।
तारा— पास रहूँगी मैं पिता—
तुमको कुछ डर नहीं। चलो, देखो उसे।
शूर०—क्या देखूँगा ? बच्चेका आकार भी
बाघोंका ही ऐसा होगा; सिर्फ वह
छोटा होगा।—कहता हूँ अनुमानसे।
एक बात मैं और कहूँ, तारा, सुनो—
तुम नारी हो। तुम्हें मर्दका वेष यह,
और मर्दके काम सोहते हैं नहीं।
रानी—क्यों न सोहते—जब मर्दोंने मर्दके
छोड़ दिये सब काम और मर्दानगी !—
जब मर्दोंके सभी काम, बर्त्ताव भी,
हुए स्त्रियोंके तुल्य;—एक लज्जा नहीं !—
जब सहते हैं मर्द पीठमें शत्रुकी
लातोंको—चुपचाप—झुकाये सिर खड़े !
शूर०—रानी ! यह वक्तृता मुझे अद्भुत लगी;
किन्तु क्रोध यह देख मुझे विस्मय हुआ
उससे बढ़कर। न्यायशास्त्र तुमने पढ़ा
नहीं: इसीसे शायद ऐसी बात है।

तारा—तो देखोगे नहीं पिताजी, बाघके
　　　बच्चेको ?

रानी—　　　　मैं देखूँगी बेटी–चलो ।

(रानी और ताराका प्रस्थान ।)

शूर०—विस्मयकर नारी–चरित्र दुर्ज्ञेय है ।

(प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—बिदोर ।

समय—तीसरा पहर ।

[वेश बदले हुए संग और तारा ।]

तारा—अच्छा, 'व्यूह' तोड़कर भीतर जानेकी अपेक्षा उससे बाहर निकल जाना कठिन है ।

संग—संसारमें सर्वत्र यही बात देख पड़ती है । तर्कमें युक्ति-जालका खण्डन करना कठिन नहीं है, लेकिन विजयी होकर निकल आना कठिन है । प्रेममें भी—

तारा—ना, मैं प्रेमकी बात सुनना नहीं चाहती । वह पागल-का सपना है ।—अच्छा मोहितसिंह, मेघनाद क्या सचमुच बादलोंकी आड़से युद्ध करता था ?

संग—वह रूपक है ।

तारा—रावणके दस सिर भी रूपक है ?

संग—रूपक तो है ही ।

तारा—तो रावण भी रूपक है ?

संग—रावण क्यों रूपक होने लगा ?

तारा—मैं कहती हूँ, हो भी तो सकता है। रामायणके कुछ अंशको जब रूपक मान लिया तब बाकी अंश क्यों नहीं रूपक हो सकता ?

संग—नहीं तारा ! वह युक्ति ठीक नहीं है। रामायण सत्य है। हाँ, उसमें जो कुछ मनुष्य-विश्वाससे परे है, वह या तो रूपक है, और या उसे काव्यालंकार मानना पड़ेगा।

तारा—क्यों मानना पड़ेगा ? या तो सब रखना चाहिए, या सब छोड़ देना चाहिए।

संग—बुद्ध, ईसा और महम्मदके संबंधमें अनेक झूठी बातें प्रसिद्ध हैं; इससे क्या यह मान लेना होगा कि वे थे ही नहीं ?

तारा—(सोचकर) मोहितसिंह ! तुमको कितनी जानकारी है। तुमसे कुछ बातचीत करनेसे कितनी ही बातें सीखी जा सकती हैं।

संग—(चुप रहता है)—

तारा—उस पर ऐसे नम्र हो। इसीसे पिताजी तुमको इतना प्यार करते हैं।

संग—केवल तुम्हारे पिताजी ही प्यार करते हैं ?

[रानीका प्रवेश।]

रानी—तारा ! तुम्हारे पिताजी तुमको बुला रहे हैं।

(ताराका प्रस्थान।)

रानी—मोहितसिंह, तुम मेवारके राजकुमार जयमलको पहचानते हो?

संग—पहचानता हूँ।

रानी—वही क्या मेवार-राज्यके होनहार राना हैं?

संग—ऐसा ही सुना है।

रानी—वह क्या ताराके योग्य वर जान पड़ते हैं?

संग—(चौंककर) क्या?—नहीं, मैं नहीं जानती!—होंगे।

रानी—मोहितसिंह! ताराके योग्य वर नहीं मिलता। मैं सियारके पल्ले शेरनीको नहीं बाँध सकती। उसके योग्य पात्र एक मेवारके युवराज ही हैं। तारा सारे राजपूतानेमें एक चित्तौरकी ही रानी होनेके योग्य है!—क्या कहते हो?

संग—बेशक।

रानी—चित्तौरके रानाके बड़े कुँअर संग्रामसिंह (संग) का तो कहीं पता नहीं है। मँझले कुँअर पृथ्वीराजको देशनिकालेका दण्ड मिला है। रहे जयमल, वही ताराके योग्य वर हैं।

संग—(स्वगत) यहाँ भी जयमल मेरा पटैत है?

रानी—तुम उत्तर क्यों नहीं देते? मोहितसिंह क्या सोच रहे हो?

संग—आपने जो कहा, वही ठीक जान पड़ता है।

रानी—तुम शायद ताराको राजी कर सकोगे; वह व्याह करनेको राजी ही नहीं होती। वह तुम्हें श्रद्धा करती है; जान पड़ता है, तुम्हारा कहा मान लेगी।

संग—(स्वगत) इतनी श्रद्धा करती है ! (प्रकट) जयमल ब्याह करनेको राजी हैं ?

रानी—वह बिलकुल राजी हैं । वह तारासे ब्याह करनेकी इच्छासे इसी सप्ताहमें यहाँ आनेवाले हैं ।—तुम चौंक क्यों पड़े ?

संग—नहीं तो ।

रानी—मैंने उनको न्योता दिया है । समझानेसे तारा भी राजी हो सकती है ।

(प्रस्थान ।)

संग—जयमलको यह रत्न मिलेगा अन्तको ?
वह गँवार समझेगा इसका मूल्य क्या !
या इस देवीका चरित्र पावक-सदृश
करदे जो उसके चरित्रको स्पर्शसे
शुद्ध स्वर्ण-सा ।—अच्छा है—बस, हो यही—
कर दूँगा यह दूर दुराशा चित्तसे ।
स्वेच्छासे साम्राज्य छोड़कर, मैं हुआ—
वनवासी—संपत्तिहीन; तारा मगर
राजसुता, रानी होनेके योग्य है !—
तारा श्रद्धा रखती है मुझ पर, मगर
अपने गुणसे; मुझमें कोइ गुण नहीं ।
उसका हो अभ्युदय; विघ्न बनकर यहाँ
नहीं रहूँगा । रानी हो मेवारकी
तारा गुनआगरी—और मैं !—मैं यहाँ
पड़कर घटना-स्रोत बीच तृण के सदृश
वह आया था:—नन्दनवन-उपकूलमें

लिपट रहा था दमभर—जो थी खिलरही
लता, उसीकी शाखासे—बस हो चुका—
फिर घटनाओंके प्रवाहमें बह चलूँ ।

[तारा का प्रवेश ।]

तारा—मोहित ! मोहित !

संग— आओ तारा—आगई ?

तारा—हाँ । कहती थीं माता क्या तुमसे अभी ?
—कौन खबर थी ?

संग—(ताराका हाथ पकड़कर) तारा !—

तारा— क्या मोहित ! कहो—
यह क्या ! यह क्यों सहसा भर आया गला !—

संग—(हाथ छोड़कर) क्षमा करो ।—कल दूर देशको जा रहा
हूँ मैं तारा ।

तारा— यह क्या ? जाओगे कहाँ ?—
बहुत दूर ?

संग— मालूम नहीं—जिस ओरको
चल दूँ ।

तारा—क्यों ? किसलिए ? कहो तो—

संग— "किसलिए ?"
—तारा तुम हो सुखी ! न पूछो "किसलिए ?"

तारा—यह कैसी है प्रहेलिका ?—(सन्देहसे) बोलो, तुम्हें
माताने तो कहा नहीं कुछ ?

संग— कुछ नहीं ।

तारा—तो फिर ?

संग— मैं कह चुका, न पूछो "किसलिए ?"
—एक निवेदन जाने से पहले करूँ ।—
मानोगी प्रार्थना ?
तारा— भली यह दिल्लगी !
संग—तारा, मैं दिल्लगी नहीं करता, सुनो—
ब्याह करो तुम, यही तुम्हारी मा चहें ।—
करता हूँ प्रार्थना उन्हींको ओर से ।
तारा—जादूगर ! इस झोली में कुछ और है ?
उसे देखने को भी मैं तैयार हूँ ।
—ब्याह ? करूँगी किससे ?
संग— तुमने क्या सुना
है जयमलका नाम ? वही मेवार के
राना होंगे ।
तारा— होंगे, इससे क्या मुझे ?
उनसे क्यों मैं ब्याह करूँ ?
संग— मेवारकी
रानी होने योग्य तुम्हीं हो शोभने !—
किसी नृपति के सिर पर ही उज्ज्वल, खरा
हीरा यह हो सके सुशोभित ।
तारा— मानती—
श्रद्धा करती—तुम्हें बड़ा भाई समझ;—
पर, मोहित, यह बात मान सकती नहीं—
रानी-पद के लिए न मैं बलि दे सकूँ
अपना जीवन । तुच्छ राज्य मेवारका
क्या है—मारूँ लात, पुरन्दर की पुरी

अथवा 'अलका' की समृद्धि भी जो मिले ।—
मैं तारा इस तुच्छ द्रव्यके लोभसे
ब्याह करूँगी ?

संग— जयमलको देखा कभी
है तुमने ?

तारा— मैं नहीं देखना चाहती,—
मोहित ! मोहितसिंह !—सत्य है, शस्त्रकी
विद्या तुमसे मैंने सीखी है; मगर
दिया नहीं अधिकार तुम्हें उपदेशके
देनेका इस बारेमें ।—मेरी खुशी—
ब्याह करूँ या नहीं करूँ ।

(गर्वके साथ प्रस्थान ।)

संग—(टहलते हुए) तारा, अगर
तुम जानतीं कि युद्ध किया कैसा कठिन,
अपने जीसे, अबतक मैंने, इस समय
करनेको यह अति अप्रिय प्रस्ताव ?—या
मुझको क्या अधिकार तुम्हें उपदेश यह
देनेका—इस तरह—अयाचित भावसे ?
—(सोचकर) होता हूँ क्यों व्यथित हृदयमें ? यह किया
जो मैंने प्रस्ताव—अयाचित भावसे—
सो ताराको सुखी बनानेके लिए ।

[ताराका फिर प्रवेश ।]

तारा—मोहित ! मोहितसिंह ! क्षमा करना मुझे ।

संग—राजकुमारी यह क्यों ? क्या तुमने किया ?

तारा—बिगड़ उठी मैं वृथा—वचन रूखे कहे ।

संग— अनुचित ही क्या हुआ ?—भृत्यको झिड़कियाँ
देनेका अधिकार मालिकोंको सदा-
से है ।

तारा— मुझको क्षमा करो । सामान्य हूँ—
केवल नारी—(सलज्जभावसे प्रस्थान ।)

संग— समझ गया । तारा, सभी
समझ गया वह देख कपोलोंमें लसी
लज्जाकी लालिमा !—नहीं तारा —नहीं
होनेका यह । नहीं करूँगा मैं कभी
तुमको दुःखित । नहीं रहूँगा अब यहाँ
लिपट तुम्हारे चरणोंमें !—होओ सुखी !
ग्रहण किया है व्रत जो स्वार्थत्यागका,
वह छोड़ूँगा नहीं । राज्य मेवारका
जैसे छोड़ा अनायास, वैसे स्वयं
छोड़ूँगा यह अनुपम रमणी-रत्न भी ।
प्राण जायँ तो जायँ भले ।—अब मैं यहाँ
नहीं रहूँगा किसी तरह । यह है बहुत
दुर्बल मेरा हृदय; प्रलोभन भी बड़ा
भारी है । इसलिए, यहाँसे, बस अभी,
जाता हूँ ।—तारासे मिलनेके लिए
साहस होता नहीं । चलो—यों ही चलो
तारा ! तो अब चला ।—पुत्रि ! प्राणाधिके !
सुखी रहो—तुम सुखी रहो—कल्याण हो ।

(प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—सराय । परदेसियोंके ठहरनेकी जगह ।

समय—रात ।

[एक बनिया और दो परदेसी]

१ परदेसी—तो यह राज्य किसका है ?

बनिया—इस समय तो किसीका भी नहीं है। मीना लोग आरावलीके पहाड़ी स्थानोंसे नीचे उतरकर देशमें जो पाते हैं, लूट ले जाते हैं। राजपूतोंने इस देशको जीता ज़रूर है, लेकिन मुनाफ़ेका गुड़ चींटे खाये जाते हैं !

१ पर०—राजपूतोंका दबाव कोई क्यों नहीं मानता ?

बनिया—उनमें कोई मुखिया नहीं है। सभी अपनी हुकूमत चलाना चाहते हैं। उनको शक्तिको ठीक तौर से जमा करनेवाला एक आदमी चाहिए।

१ पर०—राजपूतोंके सेना नहीं है ?

बनिया—सेना क्यों न होगी ? राजपूत-सेना सब नाड़ोलके क़िलेमें पड़ी हुई बेखटके खर्राटे ले रही है। उनके सामने ही मीना लोगोंका सरदार राजछत्र सिर पर लगाये राज्य कर रहा है, और वे मानों देखते ही नहीं हैं।

२ पर०—(डरकर) अरे बापरे ! तब तो कल ही यहाँसे बोरिया-बँधना समेटकर 'नौ--दो--ग्यारह' हो जाना चाहिए।

१ पर०—यह कहने की बात है !

[पृथ्वीराजका प्रवेश।]

बनिया—यह कौन आया ? राजपूत देख पड़ता है।

पृथ्वी०—तुम लोग कौन हो ?

१ पर०—हम और कौन हैं ? हम हैं हम !

पृथ्वी०—(दूसरे परदेसीसे) महाशय, यह क्या सराय है ?

२ पर०—(अनुकरण के स्वर में) हाँ भाई, सराय है !

पृथ्वी०—मालिक कहाँ हैं ?

१ पर०—क्यों ?

२ पर०—मान लो, मैं ही मालिक हूँ।

पृथ्वी०—यह दिल्लगी करनेका समय नहीं है। जल्द बताओ नहीं तो— (म्यानसे तलवार खींच लेना)

१ पर०—यह—यह कैसी बात है ?

२ पर०—एँ—इसकी तो कुछ चर्चा न थी।

बनिया—महाशय, जरा ठहरिए—धीरज धरिए। मालिक अभी आते हैं। राज्य अराजक अवश्य है, लेकिन ऐसा अराजक नहीं कि आप जब चाहे, हरएकका सिर काट कर फेक दें।

पृथ्वी०—नहीं महाशय, क्षमा कीजिएगा ।

(तलवार को म्यान में करना ।)

बनिया—वह देखिए, सराय के मालिक आगये।

[मालिक का प्रवेश ।]

बनिया—यही इस सरायके मालिक हैं।

१ पर०—(मालिकसे) महाशय ! यह अभी आपको खोज रहे थे।

मालिक—(पृथ्वी से) आप क्या चाहते हैं ?

२ पर०—अभी तो मेरा यह सिर काटना चाहते थे । जैसे लावारिस माल पाया है—और नहीं तो क्या !

पृथ्वी०—हम आज यहाँ रहेंगे।

मालिक—अच्छी बात है ! रहिए न।—कितने आदमी हैं ?

पृथ्वी०—मैं हूँ और मेरे साथ पाँच आदमी हैं।

मालिक—अच्छी बात है ! रहिए न । खाने-पीने की क्या तैयारी करूँ ?

पृथ्वी०—मेरे पास लेकिन एक कौड़ी भी नहीं है।

मालिक—कौड़ी भी नहीं है ! तब तो यह अच्छी बात नहीं। आपका चेहरा बिलकुल ख़राब नहीं है। लेकिन सिर्फ़ यह चेहरा देखकर ही इस शहर में कोई खिलाने-पिलानेवाला देख नहीं पड़ता।

पृथ्वी०—यहाँ कोई बनिया-महाजन है ?

बनिया—क्यों ?

पृथ्वी०—यह हीरेकी अँगूठी बेचूँगा।

बनिया—देखूँ (देखकर, चौंककर) समझ गया, आप क्या—

पृथ्वी०—(गर्वके साथ) मैं पृथ्वीराज हूँ।—नाड़ोलमें रहने आया हूँ।

बनिया—अच्छी बात है ! नाड़ोल आज सनाथ हुआ ! (सरायके मालिक से) इन लोगोंके लिए सबसे अच्छे कमरे रहनेको दो। सबसे अच्छे भोजनका प्रबंध करो। दाम मैं दूँगा।

मालिक—(विस्मयसे) अच्छा ! (पृथ्वीसे) आइए महाशय, आपके साथी क्या बाहर हैं ?

पृथ्वी०—जी हाँ।

मालिक—चलिए। (दोनोंका प्रस्थान।)

बनिया—यह मेवार के राजकुमार पृथ्वीराज हैं।

२ पर०—(चौंककर) कहते क्या हो ? यह !!!

१ पर०—इसीसे इतना रूखा मिजाज है।

बनिया—इनका-जैसा वीर आजतक राजपूतानेमें पैदा नहीं हुआ। इन्होंने एक बार अकेले एक सौसे अधिक मुसलमानोंसे लड़कर विजय प्राप्त की है।

१ पर०—(आँखें फाड़कर) हाँ !!!

२ पर०—यह तुम्हें पहले कहना चाहिए था। चलो चलो, देख तो लें। ज़रा अच्छी तरह देखकर पहचान लेना चाहिए। अच्छी तरह देखा नहीं।

१ पर०—चलो चलो। (दोनों का प्रस्थान।)

बनिया—इनके द्वारा कार्य सिद्ध होगा। नाड़ोल फिर राजपूतों-का होगा। (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—विदार।

समय—तीसरा पहर।

[वृक्षके नीचे घोड़ेसे उतरकर खड़े हुए जयमल
और वृक्षके सहारे खड़ी हुई तारा।]

तारा—चलो, सुन लिया ! वही एक ही धुन लगी,—
'तुम्हें चाहता', 'तुम्हें चाहता'—एक सौ
दफ़े सुना। यह वाणी जैसे सड़ गई;
घृणा हुई है इससे। इसको मैं न अब
सुना चाहती।

जय०— सुनना ही होगा तुम्हें।—
तारा ! तुमको चाहूँ मैं जी-जानसे !

तारा—चाहे चाहो तुम, चाहे चाहो नहीं;
किसका इससे कुछ बनता या बिगड़ता ?

जय०—"किसका इससे कुछ बनता या बिगड़ता !"
तारा ! यह क्या सचमुच ही तुम कह रहीं ?
सच है क्या, मैं चाहूँ या चाहूँ नहीं ?

इसकी परवा तुम्हें नहीं ?—इससे बने-
बिगड़े कुछ भी नहीं तुम्हारा ?

तारा— हाँ, यही
बात सत्य है। अविश्वासका क्या तुम्हें
कोई कारण देख पड़े ? सौ बार मैं
यही कह चुकी, फिर कहती हूँ, एक सौ
एक बार—तुम चाहो या चाहो नहीं,
ताराका कुछ इसमें बनता-बिगड़ता
नहीं। सुन लिया ?—जाओ।

जय०— हा, कैसी कठिन
नारी हो ?—पाषाण-हृदय !—किसने तुम्हें
रमणीका यह रम्य रूप देकर रचा ?

तारा—विधिका भ्रम ! क्या किया जाय !

जय०— तुम चाहतीं
आप नहीं,—विश्वास करा सकूँ यह; मगर
क्या तुम सच्ची चाह समझतीं भी नहीं ?
कहते किसको प्रेम—जानतीं भी नहीं ?

तारा—प्रेम !--कहाँ, सो मुझे सिखाया ही नहीं
कभी किसीने। अस्त्र-शस्त्र-विद्या, गणित,
शास्त्र और विज्ञान—यही सीखा, कभी
प्रेम न सीखा मैंने। शायद प्रेम है
धनियोंका संभोग। सोहता वह नहीं
घरसे खेदे गये, दीन, दारिद्र्यसे
पीड़ित, परवश, हीन, एक सामन्त की
कन्या ताराको।—न चाहकी चाह है।

साधकजनका नहीं । पड़ा जो सो रहा,
वंशीध्वनिसे नहीं जगे, उसके लिए
तुरहीका ही नाद चाहिए ।—बस कुअँर,
लौट जाइए । जन्मभूमि जबतक दुखी
पराधीन है, तबतक मुझको प्रेमकी
बातें करनेकी छुट्टी ही है नहीं ।

जय०—अगर तुम्हारी मातृभूमिका कष्ट मैं
हरूँ—करूँ उद्धार ?

तारा— करूँगी ब्याह तो । —
तुम्हें चाहती या न चाहती हूँ, मगर
ब्याह करूँगी । (सोचकर)
सच कहती हूँ मैं कुअँर,
ब्याह करूँगी । नई जवानी, रूप यह,
स्त्रीका रत्न सतीत्व—और जो कुछ स्त्रियाँ
प्यारा समझें, सब चरणोंमें आपके
बलि दूँगी;—जिस तरह चुराकर खाद्यको
भूखा छोड़े धर्म; बहाती जिस तरह
माता गंगामें अपनी सन्तानको ❀ ।

जय०—अच्छा ! तारा, मगर ब्याहके बाद तुम
प्रेम करोगी मुझसे ?

तारा— यह जानूँ नहीं;
तो भी अपना रूप, जवानी, यह सभी

❀ बंगालमें पहले यह प्रथा प्रचलित थी । पुत्र के जीनेके लिए मातायें गंगाको बालि देना मानती थीं और वैसा ही करती भी थीं ।

बेचूँगी बेउजर तुम्हारे हाथ मैं ।—
होगी वह सम्पत्ति तुम्हारी ।

जय०— तो यही
होगा ।

तारा— बस जाइए । प्रतिज्ञा यह, कुँअर
जबतक पूरी न हो, न तबतक सामने
मेरे आना ! आओगे तो फिर नहीं
अच्छा होगा । समझे ?

जय०— समझा ।

तारा— जाइए । (प्रस्थान ।)

जय०—तारा—तारा, हाय, विमुख जितनी बनो
उतनी ही लालसा बढ़े—जैसे रुका
जल-प्रवाह रह रहकर करता जोर है ।
देखी हैं मैंने अनेक नारी, उन्हें
बातोंसे या धन देकर वश कर लिया ।
किन्तु न ऐसी रमणी देखी है कभी ।—
आगे ज्यादह बढ़ो अगर तो जल उठे
बिजली सी उसकी आँखोंमें; क्रोधसे
ओठ फड़कने लगते हैं: मैं खौफ़से
हट जाता हूँ पीछे ।—ऐसा तेज है !
पर उसकी हर बात, अदा, या देखना—
काम-अग्निका ईंधन है ।—कैसी—अहो—
अद्भुत है यह नारी ! खेदे दूरको
जितना, उतना और खींचती पासको । (प्रस्थान ।)

छठा दृश्य ।

स्थान—तमसाके अन्तःपुर ।

समय—रात ।

[सारंगदेव और तमसा ।]

तमसा—समझ गये ?

सारंग०—समझ गया

तमसा—मालवेके नवाबने आकर सहायता देना स्वीकार कर लिया है । तुम नवाबसे कहना कि वह अगर एक दफ़ा खुद आकर मेरे स्वामीको समझावें तो और अच्छा हो ।

सारंग०—मगर सूर्यमलको समझाना एक तरहसे असंभव है । उनकी दृढ़ कर्त्तव्य-परायणता, प्रभुभक्ति, भाईका स्नेह—

तमसा—उनके चरित्रको तुम्हारी अपेक्षा मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ । वह कर्त्तव्यपरायण, प्रभुभक्त और स्नेहशील अवश्य हैं लेकिन उनकी बुद्धि पानीकी तरह पतली है । कभी इधर ढुलक पड़ते हैं, कभी उधर ।

सारंग०—तो फिर उनके राजी होने पर भी उनका विश्वास क्या है ?

तमसा—इसके लिए चिन्ता नहीं है । वह अगर एकबार प्रतिज्ञा कर लेंगे, तो मैं जानता हूँ, प्राण देकर भी उस प्रतिज्ञाका पालन करेंगे । तो भी प्रतिज्ञापत्रमें देहके रुधिरसे हस्ताक्षर करा-लेनेके लिए नवाबसे कह देना । क्या जानें, जहाँ सत्यके विरुद्ध कर्तव्यपरायणता है, वहाँ सत्यका नाश होना बिलकुल ही असंभव नहीं ।

सारंग०—अच्छी बात है !—मगर जयकी आशा बहुत ही कम है । केवल यही भरोसा है कि राना बूढ़े हैं और सारी सेना सूर्य-मलकी मुट्ठीमें है । नहीं तो—

तमसा—कुछ डर नहीं । मगर यह सुयोग बीत जाने पर फिर नहीं मिल सकता ।—समझ गये ?

सारंग०—समझ गया ।

तमसा—सब बातें याद रहेंगी ?

सारंग०—रहेंगी ।

तमसा—अच्छा तो जा सकते हो । समझे सारंग, याद रखना, (सारंगके कन्धे पर हाथ रखकर स्नेहसे) तुम्हारे ही लिए इतना कर रही हूँ ।

सारंग० (सिर झुकाये हुए) आप मेरे लिए इतना क्यों कर रही हैं ?

तमसा--क्यों कर रही हूँ ? तुम्हारे लिए नहीं करूँगी सारंग, तो और किसके लिए करूँगी ?—सारंग ! सारंग नहीं जानता, तू मेरा कौन है ?—ना, अभी नहीं । काम पूरा हो जाने पर कहूँगी । तुम्हें मेवारके सिंहासन पर बिठाकर तब कहूँगी ।--वह बात हृदयके मर्मस्थलकी—बड़ी गहरी—बड़ी गुप्त है ।—इस समय जाओ । (वेगसे प्रस्थान ।)

सारंग०—अद्भुत बात है ! मैं जानता हूँ, यह मेरी भलाई चाहती हैं । लेकिन क्यों ? फिर यहाँ तक ! बीचबीचमें घोर सन्देह होता है ।—यहाँ तक ! (चिन्तित भावसे प्रस्थान ।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—ताराके सोनेकी कोठरी।

समय—रात।

[अकेला जयमल]

जय०—छद्मवेषसे, छिपकर, आधीरातको
आया हूँ ताराके शयनागारमें।
नहीं जानता, ताराकी क्या राय है—
तो भी आया। कैसा दुस्साहस किया
अन्धभावसे! किस आशासे मैं यहाँ
छिपकर आया ताराके एकान्त इस
शयनभवनमें? अबतक पूरी कर सका
नहीं प्रतिज्ञा अपना। सेना है कहाँ?
टोड़ाका उद्धार करूँ मैं किस तरह?
करनेसे अनुरोध, पिताने स्पष्ट ही
लिख भेजा है—"जो कि स्वयं निश्चिन्त हो
सोता, उसका काम करेगा और क्यों?"
दिखलाया ताराको मैंने रूढ़ वह
लेख पिताका! तब उसने कुछ गर्वसे
कहा—"बहुत अच्छा है! तो फिर जाइए।
अब आना मत!"—अब जो देखेगी यहाँ
तो तारा क्या मुझे कहेगी?—देखकर
मुंह फेरेगी? झिड़की देगी? या मुझे
दूर करेगी—दुतकारेगी? हाँ—यही
संभव है!—दृढ़ भाव दिखाकर स्पष्ट ही

उसने है कह दिया, न चाहे वह मुझे ।
—नहीं नहीं, वह मुझे चाहती है बहुत ।
स्त्री-चरित्रको कौन समझ सकता भला ?
स्त्रीका हृदय 'रहस्य' रहेगा सर्वदा ।
कहती कुछ हैं, करती कुछ हैं नारियाँ ।
"नहीं चाहती" अगर कहे, तो जान लो,
तुम्हें चाहती है सलज्ज सद्भावसे ।—
हा तारा ! यह तेरा जीवन छल-भरा
कैसा एक अपूर्व कामका जाल है !
मीठा मिथ्यावाद मुझे मोहित करे !
दोनों हाथ पसार, बुलाकर, फिर अहो
तुम मायाकी मरीचिका सी दूर हो
हट जाती हो ।—जो होना हो, हो । बढ़ा—
हुआ अग्रसर जब इतना, तब अन्त तक
विना परीक्षा किये न जाऊँगा कभी !
चाहे चाहे और न चाहे, किन्तु मैं
उसकी आशा कभी छोड़नेका नहीं ।
छलसे, बलसे, या कौशलसे मैं उसे
वश कर लूँगा ।—तब तक रहना चाहिए
छिप करके बस इसी द्वारकी आड़में;
वह आती है तारा दासीको लिये,
बातें करती उससे ।—अब मैं छिप रहूँ । (छिप जाता

[तारा और दासीका प्रवेश ।]

तारा—माताकी आज्ञा है ! श्यामा ! तो कहो
मातासे—जो उनकी आज्ञा है यही,

तो जयमलसे ब्याह करूँगी मैं। मगर
जयमलको मैं नहीं चाहती,—कह दिया
कई बार यह उनसे मैंने स्पष्ट ही।—
कह देना फिर यही।

दासी— कुमारीजी, उन्हें
चाहोगी—कुछ समय बीतने दो।

तारा— नहीं—
कभी नहीं। वह दुष्ट, नीच, भय-संकुचित,
क्षुद्र हृदयका है। चाहूँगी मैं उसे?
कुत्तेको या गीदड़को भी चाहना
उससे अच्छा।

दासी— राजपुत्र हैं वह।

तारा—
तो भी उससे घृणा।

दासी— वही मेवारके
राना होंगे।

तारा— तो जानो मेवारके
दिन आये हैं बुरे।—करूँ उससे घृणा
तो भी—

दासी— निश्चय यही?

तारा— यही निश्चय किया
जा, जननीसे कह देना बस तू यही।—
दिया बुझादे।—अच्छा। जा, आराम कर।

(दिया बुझाकर दासीका प्रस्थान)

तारा—(द्वार बंद करके खिड़कीके पास जाकर आकाशकी ओर देखकर)
सन्नाटा छारहा ! रात बोती बहुत !
थकी हुई हूँ, अंग शिथिल सब हो रहे ।
यह वैशाखी हवा जोरसे चल रही ।
हुआ नींदका राज्य; न कोई शब्द है ।
अन्धकारमें डूबे हैं सब पासके
जंगल, बस्ती, गाँव । नील आकाशमें
बादलका कोई भो टुकड़ा है नहों ।
तारा, ग्रह, नक्षत्र, यही केवल वहाँ
बेशुमार हैं चमक रहे । --सोऊँ । (सोना) नहीं,
नींद नहीं आती आँखोंमें ।—हर घड़ी
माताका आक्षेप, पिताकी लाञ्छना
सोचा करती । माता क्यों करती रहें
तिरस्कार सर्वदा पिताका ? -हा उन्हें
जान न पड़ता, वह उनकी लाञ्छना
कितनी लगती बुरा पिताको । सो रहूँ—
नींद आरही अब तो । (सो जाना)

जय०— तारा सो गई ।
अबतक छिपकर बहुत आत्मनिन्दा सुनी ।
यद्यपि है वह सत्य, तिक्त तो भी बड़ी ।
बदला लूँगा इसका ! देखूँ, बंद है
दरवाजा या नहीं । (द्वार देखकर) बंद है ।
(पास जाकर देखना)
(दांत पीसकर)— इस समय
बेशक है सुन्दरी !—सलोतर सुन्दरी ?

कैसी आँखें हैं विशाल ! कैसी भवें !
आहा ! कैसे केश घने चिकने बड़े
तकिये पर हैं पड़े ! रंग कैसा, खरा
सोना जैसे चमक रहा है ! देह भी—
कैसा चौड़ा है, बलिष्ठ है, और दृढ़
होने पर भी कोमल है । रक्खा हुआ
एक हाथ पर गाल; दूसरा हाथ भी
कैसा सीनेके उभार पर है पड़ा !
कैसे फड़कें सरस अधर लाली लिये—
जैसे चुम्बन माँग रहे—पाते नहीं—
इस लज्जासे लाल हो उठे । साँसके
लेनेमें वक्ष:स्थल स्पन्दित हो रहा—
आलिंगन माँगता अग्रसर हो प्रथम,
फिर हताश हो लौटे—लंबी साँस ले ।

तारा—(चौंककर उठकर) कौन !

जय०— प्रिये, इन चरणोंहीका दास मैं
जयमल हूँ ।

तारा—(खड़े होकर) तुम ! यहाँ ! रातमें !

जय०— मैं—प्रिये—

तारा—(दृढ़ स्वर से) समझी, जाओ !

जय०— मैं जाऊँगा यों नहीं—
पूर्ण मनोरथ हुए बिना—तारा ! (आगे बढ़ता है)

तारा— अलग !—
नीच ! भीरु ! कापुरुष !—तुम्हें लज्जा नहीं ?
छिपकर, जैसे चोर, रातको, तुम यहाँ

कन्याके एकान्त शयनगृहमें घुसे ?
ऐसे हो अश्लील ?

जय०— ज्ञान जाता रहा
तारा ! (पैरों पर गिरना)

तारा— जो तुम यह अपनी घृणित
गुप्त उपस्थिति और बढ़ाओगे यहाँ
तो जावेंगे प्राण ।

जय०—(उठकर) क्या करोगी भला ?
बन्द कर लिया द्वार प्रथम मैंने प्रिये !

तारा—बन्द कर लिया द्वार ? इसीसे सोचते
हो मनमें —तुम यहाँ निरापद हो ? भला !
बड़े साहसी तुम हो। तारा एक ही—
कुआँर !—सैकड़ों जयमलको इस पैरकी
ठोकरसे मल सके चींटियोंके सदृश ।
—मूढ़ ! अगर हो प्राणोंकी ममता तुम्हें
तो जाओ—बस, चल दो ।

जय०— पूरी कामना
अपनी करके जाऊँगा—ऐसे नहीं ।
(कोमल स्वरसे)
अबकी तो सुंदरी, न चकमा चल सके—
जासकतीं यों नहीं—(हाथ पकड़ना)

तारा—(हाथ छुड़ाकर और पलंगके नीचेसे तलवार निकालकर)
अधम ! इतना तुम्हें
साहस ! इतनी है मजाल ! मुझको छुओ !—
तुम क्षत्रिय हो ? बापाकी सन्तान हो ?

कहती हूँ, जो तुम्हें प्राणका मोह हो
तो जाओ बस। नहीं मरोगे।

जय०—(भयके भावमें भागनेके लिए उद्यत होकर)
शान्त हो
नारी! तेरी खिंची हुई तरवारसे—
निकल रही ये आँखोंसे चिनगारियाँ—
अधिक भयंकर मुझे जान पड़तीं! करो
क्रोध शान्त। तारा—मैं जाता हूँ अभी।
(द्वार खोलना)

[लालटेन और पिस्तौल लिये हुए शूरतानका प्रवेश।]

शूर०—घोर रातके समय कौन है यह घुसा
मेरी कन्याके इस शयनागारमें?

तारा—जयमल हैं—युवराज राज्य मेवारके।

जय०—छोड़ो मेरी राह—जारहा हूँ—

शूर०— कहाँ
जाओगे? कर कलुषित कन्यागेहको—
जाओगे अब कहाँ? सत्य है, मैं पतित
हूँ, दरिद्र हूँ, और अभागी हूँ, मगर
तो भी राजा हूँ, तारा है नृपसुता।—
किसकी पड़ी मजाल, करे अपमान जो
उसका?—वह हो राजपुत्र मेवारका—
उसे कलंकित करके घरको लौटकर
जासकता है कभी न जीता जागता।

जय०—(काँपती हुई आवाजसे)
क्षमा करो।

शूर०— मैं क्षमा नहीं सीखा।

तारा— पिता,

भीत, भागते और निहत्थे व्यक्तिको
छोड़ दीजिए। क्षात्रधर्म यह है नहीं।

शूर०—घृणित चोर सा जो घुसता है रातको
नागरिकोंके घरमें, वह क्षत्रिय नहीं।
क्षात्रधर्मका पालन उसके साथमें
करना ही चाहिए नहीं। वह चोर है।
दण्ड चोरको मैं दूँगा।—जयमल ! खड़ा
हो आगे।

जय०—(घुटने टककर) मैं कभी न आऊँगा यहाँ—
क्षमा करो।

शूर०— चुप चोर ! खड़ा हो सामने।
(गोली मार देना)

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—रानाका महल।

समय—प्रातःकाल।

[राना और सूर्यमल।]

राय०—जयमलकी अपमृत्यु हुई। भाई, सुना
समाचार यह पहले ही मैंने।

सूर्य०— प्रभो,
मुझसे अबतक कहा नहीं यह आपने ?

राय०—कहा नहीं, क्या कहता ? कहनेकी नहीं
वह कलंककी बात। सुना जिस दम उसे—
वैसे, जैसे लाल रंग हो शर्मसे
आसमान फट पड़ा; किसीने ढाल दी
ज्यों चितौरके राजवंश पर कालिमा।—
बापाकी सन्तान अधम ऐसी हुई !
हाय रायमलका कुमार !!! इतना अधिक
लंपट-कायर—नीच !!! अहो धिक्कार है—

(मुँह हाथोंसे ढकना।)

सूर्य०—हा जयमल !

राय०— मत कहो "हाय जयमल !"—उसे
उस कुकर्मका दण्ड ठीक ही मिल गया।

सूर्य०—क्यों राजन ?

राय०— जा दुष्ट कुमारीको छुए—

विमल बिछौना उसका करना चाहता

दूषित ; नीचा हाय दिखावे वंशके

गौरवको ; दुर्भाग्य पतितको कर सके

लाञ्छित निःसंकोच; दण्ड उसके लिए

एक मृत्यु है—यही दण्ड बस ठीक है।

शूरताननने वही दण्ड उसको दिया ।—

दुःख यही रह गया—न उसको दे सका

मृत्युदण्ड मैं अपने हाथोंसे यहाँ ।

सूर्य०—बदला लेंगे नहीं आप ?

राय०— बदला ? कहा

तुमने भी यह खूब। उचित है क्या यही ?

बदला लूँगा ? बदला लूँगा बस यही—

लाञ्छित, दुःखित और पराजित शत्रुसे—

शूरतानको एक खण्ड निज राज्यका

दूँगा । है प्रतिकार यही सन्तानके

दुराचारका । पिता जहाँतक कर सके—

जो कुछ है कर्त्तव्य—करूँगा मैं ।—अभी

मन्त्रीको मन्त्रणाभवनमें भेज दो ।—

जाओ भाई ! (प्रस्थान)

सूर्य०— तुम उदार हो, उच्च हो ।

किन्तु—किन्तु—तुम इतने, ऐसे हो—कभी

मैंने अपने मनमें सोचा भी नहीं ।

(प्रस्थान)

———

दूसरा दृश्य ।

स्थान—मीनों का राज्य ।

समय—प्रातःकाल ।

[पृथ्वीराज और बनिया ।

पृथ्वी०—स्थापित यह नव राज्य किया मैंने यहाँ
निजभुजबलसे, और दिखाया बापको—
इस शरीरमें, इस शोणितमें, वंशकी
मर्यादाके सिवा और कुछ सार भी
है । असभ्य इन मीनोंके इस राज्यको
इन हाथोंके बलसे मुट्ठीमें किया ।
निर्भय होकर राजपूत नाड़ोलमें
आज घूमते फिरते हैं ।

बनिया— प्रिय मित्र तुम
सच कहते हो ।

पृथ्वी०— पाँच सिपाही साथमें
लेकर आया था, देखो, इस राज्यमें ।
पर अब पाँच हजार वीर सरदार ये
मेरी आज्ञाके अधीन हैं ।

बनिया—(स्वगत) हाय यह
बहादुरी जो नम्र कहीं होती !—अहो,
इस पृथ्वी पर सभी गुणोंका एकमें
समावेश अति दुर्लभ है ।

[दो चोपदारोंका प्रवेश]

पृथ्वी०— क्या है खबर—
चोपदार ?

चोप०— सरकार, दूत मेवारसे
समाचार कुछ लाया है यहाँ ।—
क्या आज्ञा है उसे ?

पृथ्वी०— दूत—मेवारसे ?—
उसको हाजिर करो ।

(चोपदारोंका प्रस्थान

पृथ्वी०— दूत—मेवारसे ?—
क्या कहते हो मित्र ? दूत मेवारसे
क्या लाया है खबर ?

बनिया— समझ पड़ता नहीं ।

[दूतका प्रवेश करके प्रणाम करना]

पृथ्वी०—तुम आये हो दूत, राज्य-मेवारसे ?
दूत—मैं आया हूँ महाराज ! मेवार से ।
पृथ्वी०—क्या लाये हो खबर ? कुशलसे हैं पिता ?
दूत—चिट्ठी है यह—हाल कहेगी सब यही !
पृथ्वी०—दो चिट्ठी । (चिट्ठी लेकर पढ़कर)

आश्चर्य ! बड़ा आश्चर्य है !

बनिया— (कौतूहलके साथ)
प्रियवर, क्या है खबर ? उसे क्या पूछ
सकता हूँ ?

पृथ्वी०— प्रिय मित्र ! बुलाया है मुझे
रानाने मेवार-राज्यमें शीघ्र ही ।

बनिया—सहसा !—कारण ?

पृथ्वी०— कारण ? कारण है यही—

भाई जयमल मरा ।

बनिया— कौन—जयमल—मरे ?

यों सहसा ? किस तरह ?—

पृथ्वी०—(बनिएसे) पढ़ो इस पत्रको ।

(पत्र देकर दूतसे)

जाओ तबतक दूत, करो विश्राम; मैं

तुमको इसका उत्तर दूँगा शामको ।

दूत—जो आज्ञा । (प्रणाम करके प्रस्थान)

बनिया— यह तो विचित्र ही बात है !—

तो तुम अब युवराज हुए मेवारके ?

पृथ्वी०—हाँ मैं हूँ युवराज । मित्र, तो भी न मैं

चाहूँ वह सम्पत्ति ! बाहुबलसे स्वयं

नया राज्य गढ़ लिया,—कमी है क्या मुझे ?

बनिया—नहीं लौटकर जाओगे मेवारको ?

पृथ्वी०—कभी नहीं ।

बनिया— यह प्रेम-कहानी तो बड़ी

ही विचित्र है ? राजसुताने प्रण किया

यह अति अद्भुत—"जो कोई क्षत्रिय बली

उसकी प्यारी मातृभूमिकी लाञ्छना

मेटेगा—उद्धार करेगा—वह उसे

वरण करेगी ।" ऐसा प्रण तो, बन्धुवर !—

कभी सुना ही नहीं, कहीं कलिकालमें

किया किसी कन्याने ।

पृथ्वी०— क्या तुम जानते
हो, कैसी है मित्र, कामिनी वह ?—
बनिया— प्रभो,
उपमा उसकी नहीं ।
पृथ्वी०— नाम क्या है ?
बनिया— उसे
तारा कहते हैं। वह तारा के तुल्य ही
सभी स्त्रियोंके ऊपर है ज्योतिर्मयी ।
पृथ्वी०—अच्छा ! मैं ही विफल प्रतिज्ञा अनुजकी
पूर्ण करूँगा—टोड़ाके उद्धार से ।
बनिया—समझा । तुम जो मित्र करोगे काम यह,
तो फैलेगी कीर्ति विश्वमें; साथ ही
पाओगे सुन्दरी-रत्न—जिसका कहीं
तुलना होगी नहीं ।

[नौकरका प्रवेश।]

नौकर— दोपहर हो गई—
महाराज—
पृथ्वी०— तो चलो, नहाना चाहिए ।
(फिरकर) आना परसों मित्र ।
बनिया— बहुत अच्छा प्रभो ।

(एक तरफ़से नौकर और पृथ्वीराज और दूसरी तरफ़से बनिया जाते हैं)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—सिरोहीके राजाका खास बैठकखाना ।

समय—रात ।

[मुसाहब और नाचनेवालियां ।]

१ मुसा०—राजा कहाँ है जी ? अभीतक बेटाने मुँह नहीं दिखाया ।

२ मुसा०—(मद्यपानके नशेसे भर्राई हुई आवाजमें) वह साला किसी जगह मोहरीमें औंधे-मुँह पड़ा होगा, और क्या !

३ मुसा०—साला कब कहाँ रहता है, कोई इसका ठीक पता नहीं !

४ मुसा०—लेकिन कब कहाँ नहीं रहता, इसका खूब ठीक पता है !

१ मुसा०—कहाँ जी ?

४ मुसा०—अपने महलमें । महीने भरमें सिर्फ एकदिन वह उधर जाता है ।

३ मुसा०—उफ़, बेचारी रानीको कैसा कष्ट है !—चित्तौरके राणाकी बेटी है !

४ मुसा०—आहा, बड़ी अच्छी औरत है ! देखा तो था उस दिन ।

१ मुसा०—आहा !

२ मुसा०—उसके लिए तो तुम लोगोंका शोक-सागर ही उमड़ पड़ा ! (नाचनेवालियोंसे) गाओ गाओ—तुम लोग गाओ—दिलबहलावके समय दिल बहलाओ ।

नाचनेवालियोंका गीत ।

धुन कव्वाली ।

भीतर हसत यामिनी मुखरी सुखसों दीपक-माल सवारे ;
आंसू--ओस नयन भरि बाहर रोवत निशा विषादहि धारे ।
भीतर प्रभा चहूंदिशि छिटकी करत फटिक-दर्पन उजियारे ;
बाहर परो असीम अंधेरो बन, मैदान घरि अंधिआरे ।
रहि रहि भीतर नृत्य-गीतकी लहरैं उठें अनंद पसारे ;
बाहर दूर निठुर जाड़की वायु कठोर चलै जनु आरे ।
गर्वित कुलटा सी गुलाबकी माला यह झूमत जब द्वारे ;
हरसिंगार तब अंधियारे मह झरत भूमि पर चुप मन मारे ।

१ मुसा०—वाहवाह, यह गीत तो हमारे राजा-रानीकी अवस्थाकी अत्यन्त सुन्दर टीका है ।

२ मुसा०—एकदम मल्लिनाथकी टीका है !

३ मुसा० क्या ! क्या कहा जी ? "झरत भूमि पर चुप मन मारे"--क्यों ?

४ मुसा०—वाह, बहुत सुन्दर है ! बड़ा ही सुन्दर है !

२ मुसा० --अरे रहने दो --ऐसी जगह पर तुम्हारा यह वेद-व्यासी ढंग अच्छा नहीं लगता !—एक अच्छा सा गाना गाओ !

१ मुसा०—यह गाना समझा नहीं ? साला कुलांगार है ?

२ मुसा०---और तू अपने बापका बड़ा भारी सपूत है ! एक-दम अपने कुलका मुँह उजियाला किये बैठा है साले !

३ मुसा०—अरे धोतीसे बाहर क्यों हुए जाते हो ?

२ मुसा०- देखो तो ! संगत तो ऐसी है, मुसाहबी तो करते हैं एक 'बछियाके ताऊ' राजाकी, और उड़ा रहे हैं भगवद्गी-

ताका तीसरा अध्याय ! स्वीकार करता हूँ, हम लोग चापर हो गये हैं ! मगर ये लोग चापर होनेकी राहमें चलेंगे भी और यह दिखावेंगे कि जैसे अभी उस दिन ऋष्यशृंग ऋ पाठशालासे पढ़कर निकले हैं—कुछ जानते ही नहीं।—मारो झाड़ू मारो।

१ मुसा०—चूक हुई बाबा ! अब मैं घूरेपर मोती नहीं बिखराऊँगा।

३ मुसा०—अजी राजा आरहा है,—राजा आरहा है।

(पाभूरावका प्रवेश। सबका पाभूरावको प्रणाम करना।)

पाभू०—(नाचनेवालियोंकी तरफ उंगली उठाकर) ये यहाँ क्यों आईं ? निकलो हरामज़ादियो। निकलो !

सब मुसा०—निकलो निकलो। (नाचनेवालियोंका प्रस्थान)

पाभू०—(दमभर टहलकर) सुनो, तुम सब सुनो।

सब मुसा०—सुनो सुनो।

पाभू०—पृथ्वीराजने किया क्या है ? जिसके गुण गा गाकर मेरे राज्यमें सबने एक बाज़ार लगानेकी तैयारी कर दी है, पृथ्वीराजने किया क्या है ?

सब मुसा०—और क्या ! किया क्या है राजासाहब ?

पाभू०—तो कहूँ ? कहूँ ? कहूँ ?

सब मुसा०—हाँ, कहिए, कहिए, कहिए।

पाभू०—ना, कहूँगा नहीं।

सब मुसा०—ना, कहनेकी कुछ ज़रूरत नहीं, हम लोग समझ गये।

पाभू०—समझ गये कैसे ? क्या समझे—कहो तो।

सब मुसा०—(एक दूसरेसे) हाँ कहो तो, क्या समझे, कहो तो।

पाभू०—कुछ भी नहीं समझ सके।

सब मुसा०—हाँ राजासाहब, हमने बहुत सोच विचारकर देखा तो समझ पड़ा कि कोई कुछ भी नहीं समझ सका।

पाभ०—तुम लोग कुछ नहीं समझ सके, सो तो मैंने पहले ही जान लिया था। अच्छा कहता हूँ, सुनो।

सब मुसा०—सुनो सुनो, राजासाहब कहते हैं।

पाभू०—सुनो वह पृथ्वीराज मेरा साला है—उसके बड़े भाग्य हैं कि वह मेरा साला है।

२ मुसा०—एकदम बहुत बड़े भाग्य हैं। महाराजका साला होना बहुतोंके बहनोई होनेके बराबर है।

पाभू०—उसने कुछ जंगलियोंको युद्धमें हरा दिया है (एक मुसा-हबसे) क्या कहते हो जी।

१ मुसा०—और क्या, मगर—

पाभू०—चुप रहो।

सब मुसा०—ए चुप रहो।

पाभू०—यह क्या कठिन है! कुछ जंगलियोंको हरा दिया है। कठिन क्या है?

सब मुसा०—और नहीं तो क्या!—कठिन ही क्या है!

पाभू०—उन जंगलियोंके साथ युद्ध करना कठिन ही क्या है! हाँ, अगर पाभूरावको परास्त करता तो समझता।

सब मुसा०—हाँ, तो समझता।

पाभू०—हाँ देखूँ—आवे मेरे सामने।—मैंने एक बार एक युद्ध किया था—जानते हो?

३ मुसा०—जी नहीं। यह तो कभी नहीं सुना कि महाराजने युद्ध किया था !—कब ?

पाभू०—ए चुप रहो—

सब मुसा०—ए चुप रहो न।

पाभू०—कब ?—इस खोजकी क्या ज़रूरत ? युद्ध किया था। इस बातको सभी जानते हैं। (चौथे मुसाहबसे) क्या कहते हो—तुमने सुना नहीं ?

४ मुसा०—सो महाराज जब खुद फ़र्मा रहे हैं तब ज़रूर ही सुना है। लेकिन सुना है या नहीं, सो ठीक याद नहीं आता।

पाभू०—चुप रहो।

सब मुसा०—(ज़ोरसे) चुप रहो।

पाभू०—ठीक है, युद्ध नहीं किया। लेकिन चाहता तो क्या कर नहीं सकता था ?

सब मुसा०—एँ:, सो क्या कर नहीं सकते थे ?

पाभू०—चाहता तो वीर होना कौनसी बड़ी बात है ? लेखक, वक्ता, गवैया, जो चाहता वही हो सकता। लेकिन—हाँ लेकिन—शुरूका बन्धन ज़रा ढीला पड़ गया, यही ऐब हो गया।

सब मुसा०—हाँ, यही ऐब हो गया।

[चन्द्ररावका प्रवेश]

१ मुसा०—यह क्या चन्द्रराव, आज सबेरे ही उदय हो आये ?

चन्द्र०—महाराज ! एक बहुत ज़रूरी ख़बर लाया हूँ।

२ मुसा०—बदनामीहीकी बात तो ?

चन्द्र०—बड़ी भारी बदनामीकी बात है ! शूरतानके एक लड़की है, उसे तो आप जानते हैं ?—महाराज कुछ ख़बर रखते हैं ?

पाभू०—हाँ सुनता हूँ।—हाँ हाँ, उसके बाद?

चन्द्र०—उसके सोनेकी कोठरीमें रानाके छोटे लड़के जयमलकी लाश निकली—

३ मुसा०—पुरानी खबर है।

चन्द्र०—और भी खबर है, सुनो तो।

सब मुसा०—सुनो सुनो।

चन्द्र०—यह खबर उड़ी हुई है कि शूरतानने ही जयमलको अपनी लड़कीके सोनेकी कोठरीमें देखकर गोली मार दी है—

४ मुसा०—बिलकुल ही पुरानी खबर है!

चन्द्र०—अरे सुनो तो। रानाने यह सुनकर—महाराजके ससुरने—यह सुनकर—

पाभ०—शूरतानको पकड़ लानेके लिए सेना भेजी है—यही तो?—इसमें आश्चर्य ही क्या है?

चन्द्र०—जी नहीं।—रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—

पाभू०—अपनी पिलही फाड़कर जान दे दी। यही तो! सो तो देंगे ही।

चन्द्र०—नहीं राजासाहब, यह भी नहीं। रानाने यह सुनकर, —रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—शूरतानको पचीस परगने दे दिये।

सब मुसा०—गोली मारनेका इनाम!

पाभू०—हाँ!—यह कहीं हो सकता है?

चन्द्र०—आइए राजासाहब! सामना करा दूँगा। मेवारसे महाराजके पास एक दूत आया है, उसीने कहा है।

पाभू०—मेवारसे दूत ? किस लिए ?

चन्द्र०—रानीसाहबको शायद ले जानेके लिए ।

पाभू०—रानीको ले जानेके लिए !

चन्द्र०—दूतने कहा, चित्तौर में यह खबर फैली हुई है कि महारानी को यहाँ बड़ा भारी कष्ट है। महाराज उन पर बड़ा ही अत्याचार करते हैं ।

पाभू०—हाँ ! उसमें रानाके बापका क्या ! अपनी रानीके ऊपर मैं अत्याचार करूँ, या न करूँ, मेरी ख़ुशी ! उसका क्या ? मैं कुछ रानाका तनख़ाह खानेवाला नौकर थोड़े हूँ, जो मुझे उनके हुक्मकी तामील करनी होगी ! चलो तो, उस दूतको मारकर निकाल दूँ ।— आओ तो सब लोग, आओ तो—

सब मुसा०—हटो हटो ! महाराज जा रहे हैं ।

(आगे राजा और पीछे सब जाते हैं)

चौथा दृश्य ।

स्थान—बिदोर । नदीतट पर वृक्षके तले ।

समय—तीसरा पहर ।

[अकेली तारा]

तारा—सिद्ध न मेरी हुई अभीतक साधना ।
आये कितने वर्ष और यों ही गये ।
अबतक मेरी मातृभूमि है शत्रुके
पैरों पर ही पड़ी । पूर्ण वह चन्द्रमा
राहु-ग्राससे छुटा नहीं ।

[दासीका प्रवेश]

दासी— इस ओर ही

महाराज आते हैं। उनके साथमें—

राजपुत्रि हैं—राजपुत्र मेवारके।

तारा—राजकुँअर मेवार-राज्यके ? क्या कहा !

कौन कुँअर हैं !

दासी— मँझले !

तारा— उनका नाम क्या ?

पृथ्वी—?

दासी— होगा राजकुमारी ! यहाँ तक

परिचय उनके साथ नहीं अबतक हुआ। (हसती है)

तारा—तू इतना हँस रही किस लिए ?

दासी— "किसलिए—"

सो कुमारसे सुनिएगा। (प्रस्थान)

तारा— क्या बात है !

दासीका यह कैसा अद्भुत आचरण !!!

—नाम सुना है मैंने पृथ्वीराजका;

सुना न होगा किसने भारतमें भला ?—

पृथ्वीकी करधनी कीर्त्ति उनकी हुई !—

किन्तु आज वह इस कुटीरमें किसलिए

आये हैं ?—इस तरह अचानक क्यों भुजा

बाईं मेरी फड़क रही ? देखा नहीं

मैंने उनको कभी। नहीं मैं जानती,

कैसे हैं वह—लंबे या नाटे, बहुत

गोरे हैं या काले, दुबले देहके
या मोटे हैं;—

[शूरतानके साथ पृथ्वीका प्रवेश]

शूर०— तारा ! पृथ्वीराज यह
हैं । क्या इनका नाम सुना है ?

तारा— हाँ पिता,
नाम सुना है।—राजकुअँर मेवारके !

शूर०—पृथ्वी ! मेरी कन्या तारा है यही !
मुझ दरिद्रके मस्तकका है यह मुकुट
मेरी कन्या तारा ।—बेटी ! क्या सुना
तुमने—पृथ्वीराज पठानोंको भगा,
भुजबलसे कर टोड़ाका उद्धार, सो
समाचार खुद लाये हैं !

तारा— मैंने नहीं
सुना पिताजी ।

शूर०— तुम्हें प्रतिज्ञा याद है
वह अपनी ?

तारा— (सलज्ज भावसे) है याद मुझे ।

शूर०— मेवारके
कुअँर ! तुम्हें मैं जामाताके रूपसे
वरण करूँ, स्वीकार करो जो तुम इसे ।
देता हूँ दामाद बनाकर मैं तुम्हें
आशीर्वाद ।

पृथ्वी०— अवश्य मुझे स्वीकार है—
जो तारा स्वीकार करें ।

शूर०— वह कर चुकी।

(ताराका हाथ पृथ्वीराजके हाथमें देकर)

पृथ्वी, तुमको देता हूँ अपनी सुता।

—साक्षी इसके नारायण हैं !—पुत्र, तुम

सुख पाओ ! तुम भी बेटी, होओ सुखी।

(वज्रध्वनि होती है)

पृथ्वी०—निर्मल है आकाश, वज्रके पातका

शब्द कहाँसे हुआ ?

शूर०— पुरोहितको बुला

उचित रीतिसे, शुभमुहूर्त्त, मैं, ब्याहका

पूछूँगा।—अब पुत्र, चलो, बाहर चलें।

(ऊपर देखकर)

आँधीसी उठ रही पूर्व-आकाशमें !

(पृथ्वीराजसहित शूरतानका प्रस्थान)

तारा—यह पृथ्वी हैं !!! प्रभु, मनमें बल दीजिए—

पूर्ण प्रतिज्ञा अपनी जिसमें कर सकूँ !—

स्वयंवरा, हूँ क्षत्रियकी कन्या; कभी

क्षत्रियका प्रण झूठा हो सकता नहीं।

[दासीका प्रवेश]

दासी—क्यों हँसती थी—राजकुमारी—आपने

जान लिया अब ?—स्वामी मनभाये मिले ?

यह क्या, तुमने मुँह अपना लटका लिया !

रोती क्यों हो ?

तारा— श्यामा, मैं रोती नहीं।

मातासे मत कहना, करती हूँ मना।

दासी—क्या न कहूँगी राजकुमारी ?

तारा—　　कुछ नहीं ।—

चलो चलें हम माताजीके पास अब ।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—सूर्यमलका बैठकखाना ।

समय—रात ।

[नवाब मुजफ्फर और सूर्यमल ।]

नवाब—कुछ न कर सकें बूढ़े राना रायमल ।
एक कुअँर उनका जयमल मर ही चुका;
संग लापता हुए; एक पृथ्वी रहे—
वे ही हैं युवराज; मगर वह दूर हैं—
कमलमीरमें राज्य बसाया है नया ।
सुना, बुलाया था उनको मेवारमें
रानाने; वह वीर नहीं राजी हुआ—
सूखा दिया जवाब । इसीसे इस घड़ी
हमला करना बहुत सहज चित्तौर पर ।
तुम जो मेरी मदद करो इस वक़्त तो
रानाको बेशक शिकस्त मैं दे सकूँ ।

सूर्य०—उससे मेरा लाभ ?

नवाब—　　तुम्हें मेवारकी
गद्दी दूँगा ।

सूर्य०—　　　　　　मुझे न गद्दी चाहिए ।
जिसने पाला बचपनसे, इतना बड़ा
किया—समझकर छोटा भाई—प्यारसे,
उसके ही होकर विरुद्ध मैं युद्धमें
शस्त्र उठाऊँ ?

नवाब—　　　　　　पाला बचपनसे ! अरे
कैसे हो नादान ! कौन मासूमको
बचपनमें पालता नहीं ? यह क़ायदा
क़ुदरतका है । उससे ही लाचार हो
लोग परवरिश करते हैं—यह है धरम ।
अगर भलाईका यह अच्छा क़ायदा
कहीं न होता, तो दुनियामें कौन फिर
रहता ? देखो, दूध पिलाती है गऊ
बछियाको; जब कोई आफ़त देखती,
उसे बचाती जान होमकर; पर वही
बछिया जब हो बड़ी, गऊके रूपमें
पैदा करती बच्चेको, तब चाहती
उसको ही—हरघड़ी प्यार करती उसे ।
अपनी माकी ओर देखती भी नहीं ।—
इस दुनियामें यार, कौन किसके लिए
अपना हक़ छोड़ता ?

सूर्य०—　　　　　　　　राज्य-मेवारमें
मेरा कुछ भी स्वत्व नहीं है म्लेच्छपति ।

नवाब—कहता है यह कौन, तुम्हारा हक़ नहीं ?
किसने तुमसे कहा; बड़ाभाई बड़ा

छोटेसे है ? कौन बड़प्पन है उसे ?
एक पेटसे दोनो ही पैदा हुए ।
डीलडौलमें, रूप-रंगमें, तुम बुरे
नहीं रायमलसे । कमाल भी कम नहीं ।
उनके हैं दो पैर, तुम्हारे भी वही ।
उनके हैं दो हाथ, तुम्हारे क्या नहीं ?
तो फिर सिर पर ताज तुम्हारे क्यों नहीं ?
क्यों वह राना हुए, और तुम सिर्फ़ हो
उनके नौकर—मेहरबानियोंसे दबे ?—
दिये हुए उनके टुकड़े खाते पड़े !
तुम दिलेर हो, और बहादुर हो; तुम्हें
शर्म न आती ? गर्म खून होता नहीं ?
इस दुनियामें, जिसके दोनो हाथमें
ताक़त है, बस वही असल हक़दार है ।

सूर्य०—ताक़त ? मेरा क्या ताक़त है ? सिर्फ़ मैं
सेनापति हूँ । यह सेना मेरी नहीं;
रानाकी है ।

नवाब— रानाकी कैसे हुई ?
पैदायशके दिन तो राना साथमें
लेकर इतनी फ़ौज नहीं पैदा हुए ?
अख़्तियार है तुम्हें बराबर फ़ौजका,—
कुछ ज्यादा भी अगर कहें तो ठीक है ।
तुम सेनापति हो, राजा ही रायमल ।

सूर्य०—(सोचकर) नहीं—दग़ा मैं नहीं करूँगा ।

नवाब— तो सदा
भाईके ही टुकड़े तोड़ोगे यहाँ !!!
कायर है, जो रखकर ताक़त हाथमें
औरोंका मुँह ताका करता पेटको।
जगो बहादुर; बदनामी मेटो; उठो—
लो अपनी तरवार—करो कोशिश कड़ी !
देखोगे, जो अपने बलसे छीनकर
लाता, ख़ुशक़िस्मती उसी नरकी तरफ़
रहती है। तुम पाते हो इस वक्त तो
खाने को तनख़्वाह, रायमल जो तुम्हें
देते हैं हो मेहरबान, पर और जब
कोई होगा राना—तो वह भी तुम्हें
देगा यों ही—यह कह सकता कौन है ?

सूर्य०—(स्वगत)क्या कर सकता ?–जो कि चारणीने कहा
वह शायद होनेवाला है सत्य ही।
मेरा क्या वश ? मैं उसमें क्या कर सकूँ ?
क्षुद्र यन्त्र हूँ मैं होनीके हाथका।—
यह होगा ही (प्रकट) म्लेच्छराज, तो हो वही।

नवाब—(उल्लासके साथ)
करते हो मंज़ूर ?

सूर्य०— मुझे मंज़ूर है।

नवाब—नहीं, खाइए क़सम।

सूर्य०— करूँ स्वीकार मैं।

नवाब—(कागज़ निकालकर)
यह है दस्तावेज़, दोस्त, इस पर अभी
करो दस्तख़त, अपने तनके ख़ूनसे।

सूर्य०—इतना तुमको अविश्वास है ? लो, करूँ
हस्ताक्षर भी।
(अपने शरीरके रक्तसे हस्ताक्षर करना)

नवाब— ठीक ! जाँचना था मुझे—
दे सकते हो खून या नहीं, जो पड़े
कहीं जरूरत।

सूर्य०— मैं क्षत्रिय हूँ म्लेच्छपति !

नवाब—तुम छत्री हो; सच्चे छत्री हो। सुनो
सेनापति, सब फ़ौज करो अपनी जमा !
मैं भी अपनी फ़ौज जमा करने चला।

सूर्य०—अच्छा !

नवाब— अच्छा !—तो जाता हूँ इस घड़ी।
(प्रस्थान)

सूर्य०—मैं राना मेवार-राज्यका ! बात यह
डरते-डरते मुझे सोचनी चाहिए।
मैं राना मेवार-राज्यका।—उच्च पद
है यह ! लेकिन बलि देता हूँ—दे चुका—
सभी धर्म सब पुण्योंका फल इस लिए !
—कैसा है यह 'त्याग' ! आज मैं क्या हुआ !
भाईसे विश्वासघात यों कर रहा !—
यह क्या मैंने उचित किया ?—बिलकुल नहीं।
समझ रहा सब। उचित नहीं मैंने किया।
धीरे-धीरे स्पष्ट समझमें आ रहा—
किया घोर अन्याय। हाय, मैं कर रहा

अति अनुचित अन्याय। किन्तु अब क्या करूँ?
आज प्रतिज्ञा अनुचित की!–क्यों की?

[तमसाका प्रवेश]

सूर्य०— प्रिये,
पूर्ण मनोरथ हुआ तुम्हारा।

तमसा— आड़से
मैं सब कुछ सुन चुकी। सुना तुमने नहीं,
सहज ढंगसे जब मैंने तुमसे कहा।
म्लेच्छराजने आकर जो समझा दिया,
तो बालकसे मान गये उसका कहा।

सूर्य०—सच है मैंने मानलिया—बचपन किया!
तमसा! तमसा! यह अनर्थ कैसा किया?
मैंने यह क्या किया? हाय, यह क्या किया?

तमसा—जो कुछ था कर्त्तव्य, वही तुमने किया।

सूर्य०—नहीं नहीं, मैं नहीं करूँगा यह घृणित—
ऐसा निन्दित—काम!—कभी होना नहीं।

तमसा—याद नहीं है, तुमने अपने रक्तसे
हस्ताक्षर कर दिये प्रतिज्ञापत्र पर?
इसी लिए मैंने नवाबके पास यह
भेजी थी अपनी सलाह—"वह आपसे
करवालें दस्तख़त प्रतिज्ञापत्र पर
देह-रक्तसे।"

सूर्य०—(विस्मयसे आँखें फाड़कर) नारी! तू क्या कह रही!
तूने दी थी यह सलाह?–षड्यंत्र है?

सब कुचक्र है !—नारी ! तू क्या कर रही !
कूटनीति राजोंकी होती आप ही
बड़ी भयंकर; तिसपर जो उसमें कहीं
स्त्रीकी बुद्धि प्रवेश करेगी, तो नहीं
कुशल राज्यकी—अभी प्रलय हो जायगा।
—यह क्या मैंने किया ! आज यह क्या किया !
सर्वनाश—बस सर्वनाश हो कर लिया !

तमसा—किया सो किया; स्वामी, आशा है मुझे,
अब न प्रतिज्ञापालनसे होगे विमुख ! (हाथ पकड़ती है)

सूर्य०—जाओ, अब मत करो खुशामद व्यर्थकी।
झूठा प्यार दिखाती मतलबके लिए।
स्वार्थसिद्धिके लिए स्त्रियाँ अच्छी तरह
ढोंग प्रेमका रच सकती हैं। बस हटो,
जाओ, सुनना नहीं चाहता और कुछ !
छोड़ूँगा प्रण नहीं।—किन्तु नारी ! स्वयं
रणमें दूँगा प्राण।

(तमसाका प्रस्थान

सूर्य०— युद्ध यह तो मुझे
करना ही होगा अवश्य। पर मैं प्रथम
यथाशक्ति निजसेनासंग्रहके लिए
मौका दूँगा भाईको। वह वृद्ध हैं,
निःसहाय हैं, तोभी अपनी शानके
मारे अपने वीर कुअँरसे वह कभी
कुछ सहायता स्वयं माँगनेके नहीं।

मैं पृथ्वीको आप युद्धकी यह खबर
भेजूँगा । फिर जगदंबा जो कुछ करे ।
(प्रस्थान

छठा दृश्य ।

स्थान—मीनालोगोंका राज्य ।
समय—चाँदनी रात ।
[पृथ्वीराज और तारा]

तारा—मैंने सीखा प्रेम नहीं था; प्रेमका
जाना था विज्ञान नहीं; तुमने मुझे
हाथ पकड़कर सभी सिखाया नाथ !

पृथ्वी०— मैं
गुरु हूँ तारा, और तुम्हारा शिष्य भी ।

तारा—मैंने सोचा न था, क्षमा करना मुझे—
मैंने सोचा न था, कभी मैं इस तरह
रुचिसे तुमको प्यारकर सकूँगी प्रभो ।
राह-घाटमें चारण लोगोंका कहा
सुनती थी जब नाथ तुम्हारी वीरता,
तब उत्कंठित हृदय चाहता था यही—
तुम्हीं मिलो पति । यही लालसा थी लगी ।
फिर जब दर्शन मिले, हृदयमें उस घड़ी
चोट लगी—अनुरूप रूप पाया नहीं ।
कठिन भावसे भरा देखकर मुख, हुआ

भयका सा संचार। नाथ, सोचा यही—
बेचा अपना रूप आप ही। किन्तु फिर
जितना तुमसे मिली और परिचय हुआ,
पाया उतना ही उदार ऊँचा तुम्हें।
मुग्ध हो गई। इन चरणोंको आज मैं
मन-वाणी-कायासे दासी हो रही।

पृथ्वी०—तारा! प्राणेश्वरी! जानता था नहीं,
इस पृथ्वीकी कठिन गोदमें यह नई
स्निग्ध और स्थिर बिजली, यह प्रिय चाँदनी
चलती-फिरती, यह सजीव सौरभ सुखद,
यह सदेह संगीत, छिपा है इस तरह।

तारा—मैं जानूँ, यह उक्ति मुझे फबती नहीं।
तुम करते हो प्यार मुझे जी-जानसे—
इससे ऐसा तुम्हें मूढ़ विश्वास है।
मैं बिजली भी नहीं, चाँदनी भी नहीं,
और नहीं संगीत; सिर्फ़ हूँ आपकी
दासी तारा।—मुझमें गुण हैं, दोष हैं।

पृथ्वी०—प्रिये, मुझे तो दोष देख पड़ते नहीं।

तारा—प्रेम देखता नहीं; प्यार केवल करे!
सागर-जलके तुल्य प्रेम बढ़ता हुआ
ढक देता है गिरि-गह्वरको एक-सा।
वह वसन्तके वायु-सदृश संगीत या
सौरभ केवल लाता है, आनन्द दे।—

भृत्य— जो आज्ञा। (प्रस्थान)

तारा— मेवारको
तुम न चाहते नाथ ?

पृथ्वी०— प्रिये मेवार ही
नहीं चाहता मुझे।

तारा— जगत्‌में कौन है
ऐसा, प्यारे, तुम्हें चाहता जो नहीं ?

[दूतका प्रवेश]

दूत—महाराज, एक यह पत्र सूर्यमलने दिया
महाराजको।

पृथ्वी०— लाओ, देखूँ पत्र मैं।

(पत्र लेकर पढ़ना और विस्मय प्रकट करना)

तारा—प्राणनाथ, क्या समाचार है पत्रमें ?

पृथ्वी०—है विचित्र ही खबर !—जगत्‌में, जो कभी
हुआ कहीं भी नहीं, वही मेवारके
राजघरानेमें अब होना चाहता।
चचा हुए विद्रोही। उनके साथ हैं—
म्लेच्छ मुजफ़्फ़र और शूर सारंग भी
तीनों मिलकर एकसाथ चित्तौर पर
जोर-शोरसे हमला करना चाहते।
इससे भी बढ़कर विचित्रता और है—
विद्रोहीने आप खबर दी है मुझे,
और किया अनुरोध—पिताका पक्ष लो;
वह बूढ़े हैं; सहायता उनकी करो।

तारा—अति अद्भुत है! जाओगे?

पृथ्वी०— तारा—नहीं!

अब रक्खूँगा नहीं पैर चित्तौरमें।

तारा—क्या कारण है नाथ?

पृथ्वी०— पिताने देशसे

मुझे निकाला आप। प्रिये, इसके सिवा,
मुझे पिताने आप बुलाया कुछ नहीं।
फिर क्या है अधिकार चचाको इस समय
मुझे बुलानेका!

तारा— प्यारे, अभिमान फिर?

—वृद्ध पिता पर जब विपत्ति है आ पड़ी,
तब किस जीसे बैठ रहोगे तुम यहाँ?
कुछ भी हो वह वृद्ध, पिता, असहाय हैं;
वह रूठें तो कुछ भी है अनुचित नहीं
किन्तु नाथ, तुम रूठ रहोगे, इस समय!
तुम उनके हो पुत्र, वीर हो साहसी,
मिली पूर्ण सम्पत्ति और गौरव तुम्हें।
क्षुद्र नीच अभिमान, रूठना बापसे।
तुम्हें सोहता नहीं। तुम्हारे बाप जब
यों विपत्तिमें पड़े—शत्रुसे घिर रहे—
तब यों हो निश्चिन्त, विषय-सुखमग्न हो,
बैठे रहना, सोह नहीं सकता तुम्हें।
—उठो वीरवर! उठो प्राणप्यारे! उठो,
इस कलंकको दूर करो।—यह कालिमा
नहीं छू सके विमल तुम्हारी कीर्त्तिको।

पृथ्वी०—तो फिर होवे यही—और तुम ?

तारा— साथ ही

जाऊँगी संग्रामभूमिमें । नाथ !—मैं

राजपूतकी बेटी हूँ ।

पृथ्वी०— तो हो यही ।—

तारा !—तुम हो धन्य । भाग्यहीसे मिलीं

मुझको । पृथ्वीके चरित्रको तुम प्रिये,

बना रही हो अपने हाथोंसे भला ।

तारा—मैं तो केवल अग्नि-सदृश हो, खान के

सोनेको कर रही शुद्ध—संसर्गसे ।

(दोनोंका प्रस्थान)

चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—राना रायमलकी बैठक।

समय—तीसरा पहर।

[अकेले हथियारबंद राना]

राय०—युद्ध छिड़ गया। सेनापतिने की दाग़ ;
विद्रोही बन, सारी सेना साथ ले,
मिला मालवेके नवाबसे ?—सूर्यमल !
तीन पुत्र चुपचाप विसर्जन कर दिये—
पुत्र-शोकसे कभी न मैं विचलित हुआ,
प्राणोंसे भी प्यारी कन्या एक थी—
उसका कठिन वियोग नहीं इतना खला;
—मगर सूर्यमल—यह तेरा असदाचरण
लगा वज्रसा, हाय, कलेजेमें। अहो,
इतनी मैंने व्यथा कभी पाई नहीं।
अरे सूर्यमल, तूने क्यों ऐसा किया ?
क्या तूने यह किया ! क्या किया ? क्या किया ?
यह तो मैंने कभी भूलकर स्वप्नमें
भी सोचा था नहीं। हाय यह क्या हुआ !

[दूतका प्रवेश]

राय०—क्या है ताज़ी ख़बर ?

दूत— ख़बर तो है बुरी—
राना जी ! भारी विपत्ति सिर पर खड़ी।
दक्षिण है 'बातुरो' पहाड़ी वन, प्रभो,
शत्रु-सैन्यका उस पर क़ब्ज़ा हो गया।

राय०—यह सच है ?

दूत— हाँ महाराज—सब सत्य है।—
हमला करनेको अब वे चित्तौर पर
चढ़े चले आरहे। पड़ी है छावनी
'गंभीरा' के तट पर।

राय०— स्पर्धा यहाँ तक !
सेनापति क्या करे, हमारी ओरका ?

दूत—भाग गये नव-सेनापतिको साथ ले।

राय०—रिश्वत ले ली।—और नगर चित्तौरके
रक्षक, पहरेदार, सिपाही ?

दूत— वे सभी
पहलेहीकी तरह द्वार-रक्षा करें;

राय०—अच्छा जाओ।— (दूतका प्रस्थान)

राय०— समरभूमिमें मैं स्वयं
कल जाऊँगा। और करूँगा क्या ?—वहाँ
युद्ध अकेले करके दूँगा प्राण मैं।
मैं क्षत्रिय हूँ। भय तो जानूँ ही नहीं !
मृत्यु और मैं, दोनों खेले साथ ही—
एक गोदमें पले। मृत्युको मैं नहीं
डरता। ले तलवार हाथमें—युद्धमें—

आज मरूँगा वीर क्षत्रियोंकी तरह,
गढ़ चितौरके राना लोगों की तरह,
बड़ी ख़ुशीसे ।—लेकिन भाई सूर्यमल !
तूने यह क्या किया ?—भवानी ! सूर्यकी
रक्षा करना ! इसे किसीने लोभ दे
इस कुचक्रमें फँसा लिया है व्यर्थ ही ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—पड़ाव ।

समय—तीसरा पहर ।

[अकेली तारा]

तारा—घोर युद्ध हो रहा । मृत्यु नाचे खड़ी ।
युद्धभूमिमें चार ओर ज्यों मृत्युकी
लहरें सी उठ रहीं । आजतक दृश्य जो
पहले देखा न था, आज देखा वही,—
हाथी, घोड़े और सिपाही रक्तमें
सने हुए सब लुढ़क रहे चारों तरफ़ ।
लाशोंके तो लगे ढेर-के-ढेर हैं ।
—आज सुना—जो सुना न था पहले कभी—
कोलाहल विकराल और ललकारना,
शस्त्रों की झनकार, मरणके कालका
आर्त्तनाद । यह युद्ध आज मैंने किया—
जीवनका भी मोह छोड़कर जोशसे ।

इन हाथोंसे आज मुज़फ़्फ़र म्लेच्छको
क़ैद किया है—लाई हूँ रणभूमिसे।

[दो सिपाहियों के साथ क़ैदीकी सूरतमें मुजफ़्फ़र का प्रवेश]

सिपाही—रानीजी,

तारा— मेरे डेरेमें! किस जगह
रक्खोगे तुम उस क़ैदीको?- वीर हो
तुम नवाब! मैं तुम्हें युद्धके अन्तमें
कर दूँगी स्वाधीन–छोड़ दूँगी। रहो
निर्भय। हम योद्धा क्षत्रिय हैं! मारते
नहीं निहत्थे क़ैदीको!

नवाब— कुछ शक नहीं—
एक बहादुर औरत तुम हो!

तारा— म्लेच्छपति,
क्षत्रिय-नारी अबतक देखी थी नहीं!
क्षत्रिय-नारी हूँ मैं। मत विस्मय करो।
—जाओ, ले जाओ क़ैदीको!—

(सिपाहियों के साथ मुजफ़्फ़रका प्रस्थान)

तारा— लौटकर
आवेंगे जब रणसे मेरे प्राणपति,
तब सुनकर यह ख़बर ख़ुशी होगी उन्हें;
प्राणोंसे भी बढ़कर चाहेंगे मुझे।
मेरे गौरवका यह दिन है आज तो।—
किन्तु, इस घड़ी—अबतक—स्वामी हैं कहाँ?
—बीतगया दिन सारा। अबतक युद्धसे

लौटे क्यों वह नहीं ? जानती, युद्ध में
हो जाते हैं पागलसे ।

[सैनिकों सहित सेनापतिका प्रवेश]

तारा— यह क्या ? यहाँ
सेनापति ? तुम आये हो रणभूमिसे

सेनापति—हाँ रानीजी, समरभृमिसे आ रहा
हूँ मैं !

तारा— हैं युवराज कहाँ !—क्या शत्रुने
हार मान ली ?—विजय हुई ?—जल्दी कहो ।

सेनाप०— रानीजी !—जय ! घिरे हुए युवराज हैं—
शत्रुसैन्यमें । वीर सिंहके दर्पसे
युद्ध कर रहे । इतना आगे बढ़ गये—
नहीं रही अब राह लौटनेकी । वहाँ
शत्रुब्यूहमें उनके सब साथी मरे ।

तारा—क्या कहते हो सेनापति ? तुम छोड़कर
उनको आये यहाँ युद्धकी भूमिसे ?
तो तुम भागे युद्धभूमिसे, लोमड़ी
जैसे, लेकर ख़बर हारनेकी बुरी ?
सेनापति ! हो मर्द, और क्षत्रिय ? तुम्हें—
लज्जा आती नहीं ? तुच्छ स्त्री मैं अगर
लौटी रणसे, तो दुश्मनको क़ैद कर—
जय पाकर । अब फिर मैं जाती हूँ वहाँ—
अभी उबारूँगी पति को आपत्तिसे !
कौन चलेगा, आवे मेरे साथ वह ।

उठे प्रबल तूफ़ान जिस तरह, उस तरह
शत्रुसैन्यके बीच जा पड़ूँगी अभी ।
कर दूँगी निर्मूल ! उड़ा दूँ धूलसा !
वाडवाग्निके सदृश, एक ही साँसमें
कर डालूँगी भस्म शत्रुदलको अभी ।
—जो चाहे वह चले । न चाहे, वह रहे ।

सेनाप०—रानीजी ! जननी पुकारती जब स्वयं—
ऊँचे स्वरसे—खड़ी, कौन तब खोहमें
छिपा रहेगा ? किसको इतना मोह है—
प्राणोंका ?—बस चलो, विकट हुंकारसे
टूट पड़ें हम शत्रुसैन्य पर । युद्धमें
जीतेंगे, या प्राण वहीं देंगे ।—चलो ।

तारा—तो फिर आओ, चलो; बुलाओ जोशसे
सब सेनाको । कहो—उच्च स्वरसे कहो—
'डरो नहीं ।' तुम डरो नहीं—मैं साथ हूँ ।

(जमीनमें घुटने टेककर)

माता ! चण्डी ! शक्ति ! भक्त-रक्षा करो ।—
प्राणेश्वरके पास न जबतक जा सकूँ,
तबतक रणमें तुम उनकी रक्षा करो ।
—महाशक्ति ! दो शक्ति ! सती निज नाथका
करनेको उद्धार जा रही युद्धमें ।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—एक साधारण घरका आँगन।

समय—तीसरा पहर।

[शान्तिरक्षक सिपाही, पहरेदार और एक सैनिक]

सैनिक—आः, कैसा घमासान युद्ध हुआ।

सिपाही—हाँ हाँ, कैसा हुआ—बताओ तो ! कौन जीता ?

सैनिक—आः, युद्ध देखकर आँखें ठंडी हो गईं।

पहरेदार—एँ ! युद्ध देखकर आँखें कैसे ठंडी हो गईं !

सिपाही—कौन जीता ?

सैनिक—युद्ध जिसे कहते हैं !

सिपाही—कैसा !—कौन जीता ?

सैनिक—तो सुनोगे ? सुनो। लेकिन मैं जिस क़ायदेसे कहूँगा, उसी क़ायदेसे तुमको सुनना पड़ेगा। नहीं तो—बस चुप।

दोनों—अच्छा वही सही।

सैनिक—सुनो। पहले समझलो कि ख़ूब युद्ध हो रहा है।

दोनों—अच्छा।

सैनिक—समझते हो ?

दोनों—समझते हैं।

सैनिक—समझते हो ?

दोनों—समझ लिया, उसके बाद ?

सैनिक—इस तरह 'उसके बाद' कह देनेसे काम नहीं चलेगा। सिर्फ़ सुने जाओ।

दोनो—अच्छा।

सैनिक—उत्तरसे मुजफ्फरने, दक्षिणसे सारंगदेवने, पूर्वसे सूर्यमलने और पश्चिमसे रायमलने चित्तौर पर हमला किया।

सिपाही—सो कैसे ? हमारे राना रायमलने चित्तौर पर कैसे हमला किया ?

सैनिक—फिर वही 'किस तरह'।—इसी तरह।

पहरे०—रायमल चित्तौरके राना हैं; वह क्यों चित्तौर पर चढ़ाई करेंगे ?

सैनिक—यह भी तो सही है। तो फिर पश्चिमसे कौन आया ? तीन तरफ़ तो ठीक हो गया; पश्चिम तरफ़ क्या बिलकुल ख़ाली था ? उधरसे कौन आया ?

दोनों—यह हम क्या जानें ?

सैनिक—यह लो—ठहरो—समझ लो, मैं—जैसे—मैं जैसे मुजफ्फर नवाब हूँ, तुम सूर्यमल हो, और तुम जैसे सारंगदेव हो—और रायमल कौन होगा ?

दोनों—हम क्या जानें ?

सैनिक—अच्छा ठहरो। (सहसा बाहर जाकर राह चलनेवाले एक किसानको पकड़ लाकर)—यहाँ—खड़ा हो।

किसान—हजूर, मैंने तो कुछ किया नहीं।

सैनिक—अरे, कौन कहता है कि किया है।

किसान—जी, तो फिर—

सैकिन—तेरी कुछ ज़रूरत है। तू राना रायमल हो सकेगा ?

किसान—जी नहीं।

सैनिक—जी नहीं क्या रे ! खड़ा हो तुझे राना रायमल होना होगा।

किसान—जी—

सैनिक—अरे खड़ा हो ना । ज़रा देरके लिए तुझे राना रायमल होना पड़ेगा । छोड़ेंगे नहीं ।

किसान—जी, क्या करना होगा ?

सैनिक—कुछ न करना होगा । सिर्फ खड़ा रहना होगा और बीचबीचमें ज़रा तुझे अपनी कुदाल घुमानी पड़ेगी । समझा ?

किसान—जी हाँ ।

सैकिन—अच्छा, सूर्यमल कौन है ?

सिपाही—मैं ।

सैकिन—अच्छी बात है ! (पहरेदारसे) और तुम मुज़फ्फर —नहीं नहीं, मुज़फ्फर तो मैं हूँ । तुम सारंगदेव हो ! (किसानसे) ठीक तौरसे खड़ा हो । सूर्यमल, पूर्व ओर रहो । सारंगदेव—उत्तर ओर, नहीं नहीं दक्षिण ओर रहो । और मैं मुज़फ्फर उत्तर ओर रहूँगा । रायमल बीचमें हैं । समझ लो, ख़ूब युद्ध हो रहा है— (किसानसे) कुदाल घुमा, कुदाल घुमा—युद्ध हो रहा है ।

दोनों—युद्ध हो रहा है ।

सैनिक—सारंगदेव ! दक्षिण ओरसे आओ । सूर्यमल ! पूर्व ओरसे आओ । और मैं, यह—तीनों जने रायमल पर हमला करो ।

(सब आकर किसानको मारते हैं)

किसान—अरे—

सैनिक—तुझे कुछ डर नहीं है । पृथ्वीराज आते ही होंगे; सिरके ऊपर कुदाल घुमाये जा । देखना, हमारे न लग जाय । घुमा । पृथ्वीराज ताराके साथ आते ही होंगे ।

(किसान चिल्लाता और कुदाल घुमाता है)

[हल लिये हुए एक किसान और उसकी स्त्रीका प्रवेश]

२ किसान—धनीसाहको तुम सब लोग मारते क्यों हो ? शराब पीकर मतवाले हो रहे हो क्या ? निकलो पाजियो।

सैनिक—(फिरकर देखकर) यह लो पृथ्वीराज भी आगये—ताराबाई भी आगई। यह लो ताराने मुझे क़ैद कर लिया। (किसानकी स्त्रीके गलेसे लिपट जाता है) और पृथ्वी ! वह देखो सूर्यमल है—उसकी गर्दन पर वार कर। मुझे क्यों मारता है ? मैं तो मुजफ्फर हूँ। यह लो, युद्ध समाप्त हो गया। भाग सूर्यमल, भाग सारंगदेव, भाग भाग—पृथ्वी आगया। दौड़ लगाओ, दौड़ लगाओ।

(तीनोंका भाग जाना)

२ किसानकी स्त्री—क्यों धनीसाह, तुमको ये लोग मारते क्यों थे ?

१ किसान—क्या जानूँ—मुझे—मुझे इन्होंने राना रायमल बनाया था।

२ किसान—ज़रूर सालोंने ताड़ी पी है। चलो।

१ किसान—(जाते जाते) मेरे भागोंसे तुम आगये भाई। नहीं तो मेरी जान ही जाती।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य।

स्थान—सूर्यमलका पड़ाव।

समय—रात।

[सूर्यमल और उनकी स्त्री तमसा]

तमसा—नींद पड़ी ही नहीं ?

सूर्य०— नींद ?—आती नहीं।—

दिनभर टहला किया पलँगके पास मैं ।
दर्द—बड़ा ही दर्द हो रहा घावमें,—
कन्धे पर ।—उफ़ ! तमसा ! तमसा ! मृत्यु क्यों
नहीं हुई ! प्रिय पृथ्वी ! मैंने गोदमें
रखकर पाला तुझे—किया इतना बड़ा ।
उसका तूने पुरस्कार अच्छा मुझे
आज दिया । मेरे कन्धे पर अन्तको
यों तेरी तलवार पड़ी ?—पर दोष क्या
तेरा ? तू क्या करे ? लिया यह दैवने
बदला मुझसे । भाई मेरे रायमल—
मुझे उन्होंने भी तो पाला गोदमें,—
बड़े प्यारके साथ किया इतना बड़ा ।
खाकर उनका नमक उन्हींसे को दगा ।
आज पुत्रने उनके बदला ले लिया ।
किन्तु मृत्यु क्यों नहीं हुई ?

तमसा— अस्थिर नहीं
होना ।

सूर्य०— अस्थिर ? हो जाऊँगा स्थिर; प्रिये,
दमभरमें ।

[एक सैनिकका प्रवेश]

सैनिक— युवराज राज्य-मेवारके
खड़े द्वार पर हैं ।

सूर्य०— पृथ्वी ! पृथ्वी !—उसे
ले आओ तुम सादर जल्दीसे यहाँ !

(सैनिकका प्रस्थान)

तमसा—(स्वगत) पृथ्वीराज शिबिरमें आया किस लिए ?

[पृथ्वीका प्रवेश]

पृथ्वी०—चचा, चची, मेरा प्रणाम स्वीकार हो ।

सूर्य०—आओ प्यारे पुत्र !—बहुत दिनतक जियो !

(तमसासे) दो असीस !—क्यों फेर लिया मुँह ? युद्धकी
भूमि नहीं यह; मेरा घर है । इस समय
पृथ्वी मेरा शत्रु प्राणघातक नहीं;
वही भतीजा मेरा प्राणाधार है ।
स्नेहपात्र है । दो असीस जीसे प्रिये,—
करो स्वयं सत्कार और अभ्यर्थना ।—
आओ बेटा ! मेरे प्राणोंसे अधिक
प्यारे ! जुगजुग जियो ।

तमसा— जियो ।

पृथ्वी०— कहिए चचा !—
कैसा है अब घाव ?

सूर्य०— वेदना है विषम;
तो भी तुमको बहुत दिनों पर देखकर
मुझे बहुत कुछ शान्ति मिली ।

तमसा— पृथ्वी—किया
तुमने खूब सलूक चचासे ! वाहवा !

पृथ्वी०—इसका, मुझको, चची, आपसे अधिक ही
दु:ख हुआ है ! (हाथोंसे मुह ढँक लेना)

सूर्य०— तुमने तो कर्त्तव्य ही
अपना पालन किया—तुम्हारा दोष क्या ?

वृद्ध पिताकी रक्षा करनेके लिए
बिद्रोहीके कन्धे पर तरवारका
वार किया । क्या बुरा किया ? कर्त्तव्य था
यही तुम्हारा ।—मैं अपने कर्त्तव्यसे
बेशक विचलित हुआ । अन्न जिसका सदा
खाया, खाकर पुष्ट हुआ, उससे दग़ा !
उस पर ही तरवार तान ली !—क्या कहूँ—
मैंने ही कर्तव्य नहीं अपना किया ।

पृथ्वी०—हाय ! चचा, किस लिए आपने यह किया ?

सूर्य०—वह प्रसंग मत छेड़ो बेटा ।—भूल मैं
गया पूछना अबतक भाईकी कुशल;—

पृथ्वी०—अबतक मुझसे और पितासे भेंट ही
हुई नहीं ।—चाचाजी, मुझको इस समय
भूख लगी है । खाने को है कुछ यहाँ ?

सूर्य०—(तमसासे) कुछ खानेको है ? तमसा देना इन्हें ।

तमसा—देती हूँ । (स्वगत) मिल जाती थोड़ी राख जो
तो देती वह इस मुँहमें । (प्रस्थान)

सूर्य०— तुम धन्य हो
पृथ्वी ! और तुम्हारी पत्नी तारा धन्य है,—
अति प्रचण्ड विक्रमसे वह वीरांगना
पकड़ ले गई वीर मुज़फ्फ़र को ।—कहाँ
तारा है ?

पृथ्वी०— हैं डेरेमें ।

[भोजन लेकर तमसाका प्रवेश]

सूर्य०— लाई ?

तमसा— यहाँ

जो कुछ था, ले आई हूँ। (पृथ्वीके आगे भोजन रखना)

सूर्य०— तमसा, कहो

खानेको तो।—तुम बेटा, भोजन करो।

तमसाकी तो प्रकृति जानते हो—इन्हें

बहुत बोलना कम पसंद है।

पृथ्वी०—(भोजन करते करते) सिंहके

विक्रमसे यह युद्ध आज मैंने किया,

चाचाजी।

सूर्य०— जो कन्धेमें लगता नहीं

ऐसा गहरा घाव, आज के युद्धका

फल होता और ही। मगर तो भी मुझे

इसका कुछ भी दुःख नहीं। मैं गोदके

पाले, अपने भाईके ही पुत्रसे

हारा हूँ।

पृथ्वी०— जल मुझे दीजिए।

(तमसाका जल देना)

पान भी।

तमसा—यह लो। (पान देना)

पृथ्वी०— तो मैं जाता हूँ अब; युद्धका

थका हुआ हूँ चचा। युद्धकी भूमिमें,

तड़के होगी मुलाक़ात—आशा करूँ।

सूर्य०—निश्चय होगो—अगर घड़ीभरके लिए

भी यह होगी शान्त घावकी वेदना।

पृथ्वी०—चचा, चची, मेरा प्रणाम स्वीकार हो ।
सूर्य०—कुलदीपक—युवराज राज्य-मेवारके !
जाओ; पाओ विजय युद्धमें; यश बढ़े ।
(पृथ्वीका प्रस्थान)
तमसा—ढंग तुम्हारा मुझे समझ पड़ता नहीं ।
सूर्य०—समझोगी तुम एक रोज़ तमसा !—कहाँ
है सारंग ?
तमसा— शिबिरमें अपने ।
सूर्य०— भेज दो
जाकर उसको यहाँ । युद्धकी मन्त्रणा
करनी होगी शीघ्र । (तमसाका प्रस्थान)
सूर्य०— जलाई है अगर
आग, जलेगी वह; उसमें जल जायँगे
नगर-गाँव सब ! मगर अगर जयलाभ हो ?
क्या होगा कर्त्तव्य ? करूँगा क्या ? स्वयं
बैठूँगा सिंहासन पर मेवारके ?—
नहीं । भतीजे पृथ्वीको मेवारका
सिंहासन दे डालूँगा ! संपत्ति है
जिसकी, उसकी हो ! मैं जाकर अन्तको
दूर और एकान्त घने वनमें कहीं,
धर्म-कर्ममें चित्त लगाऊँगा वहाँ ।
(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—सिरोही। यमुनाके महलकी छत।

समय—रात।

[अकेली यमुना]

यमुना—घोर अमावसकी यह काली रात है।—
चमक रहे नक्षत्र-पुंज आकाशमें,
घने निराशाके सागरमें जिस तरह
बीती बातोंकी शुभ स्मृति हो सुखमयी।
—पृथ्वी पर पूरा सन्नाटा छा रहा।
सिर्फ़ दूर पर वह वंशी-ध्वनि सुन पड़े—
जैसे रोती रात करुण स्वरसे कहीं।
—आ रजनी! आ सखी! मुझे तू प्रिय लगे
दोनों दुखिया, बैठ यहाँ एकान्तमें,
आ—रोवें चुपचाप, ताप कुछ शान्त हो।

गान।

आसावरी-धीमा तिताला।

आवहु आवहु रैनि पियारी ;
तारनभरी, शान्तिसुखदायिनि, जीव रहैं सब दुःख बिसारी।
पीड़ित व्यथित हृदयसों सजनी, तोहिं रही मै आज पुकारी ;
धधकि रही है आगि हिये महँ, शान्ति-सलिलसों बेगि बुझा री।
लागत दुःख-सेल, हिय फाटत, मर्मव्यथा सो अकथ कथा री ;
कासों कहौं, शान्तिमयि, तो बिन, अपनी रामकहानी सारी।

घना, बहुत ही घना, अँधेरा छा रहा;
पृथ्वीको ढक रहा। निराशा भी घनी,

ख़ूब घनी, ढक रही हृदयको, छा रही ।
नहीं जानती, यह जीवनकी नाटिका
होगी कहाँ समाप्त । 'सतीका देवता
स्वामी है'—उपदेश चचाका यह, किया
जीवनका व्रत । दुःख, शोक, अपमानमें
और चित्तके आन्दोलनमें—जो कि है
पारावार अपार—किया इस मन्त्रको
जीवनका ध्रुव-तारा । तो भी ज्योति वह
कभी कभी ढक जाती घन घन-जालसे ।
देख पड़े फिर । किन्तु हाय, जानूँ, नहीं
इस समुद्रका पा सकती हूँ पार मैं ।
जानूँ, है ही नहीं अवधि इस दुःखकी ।
तो भी रहती सदा धैर्य धारण किये ।
इस व्रतका उद्यापन करती, दुःखमें,
बैठ अकेले-सूनेमें—चुपचाप मैं ।
—तो भी पतिको प्यार नहीं मैं कर सकूँ;
भक्ति, हृदयकी पूजा, दे सकती नहीं ।—
प्रभो, दयामय, शक्ति दीजिए कर दया ।—
शक्ति दीजिए; दुर्बल है मेरा हृदय ।—
वह आते हैं स्वामी !—सहसा आज क्यों ?

[पाभूरावका प्रवेश]

पाभू०—यमुना—

यमुना—(स्वगत) आवाज़ शराबके नशेके मारे भर्राई हुई है ।

पाभू०—तुम्हारा नाम है यमुना ? तुम्हारे बापको तो मैं नहीं पहचानता । तुम्हारे बापका नाम क्या है ?

यमुना—मेरे पिता मेवारके राना रायमल हैं।

पाभू०—ठीक है ! वही साला ते तुम्हारा बाप है । क्या नाम बताया उसका ? तुम्हारा यह बाप, प्यारी—तुम्हारा बाप चोर है—बड़ा पुराना चोर है ।—बुरा न माने;—प्रमाण देता हूँ—

यमुना—प्रभू ! मेरे पिता साधु हैं या चोर, से मैं तुम्हारे मुँहसे सुनना नहीं चाहती ।

पाभू०—प्रमाण देता हूँ—यही देखे, उस पाजी बदमाश बुड्ढेने अपने समधी शूरतानको अपना कुछ राज्य ही दे डाला । और, मैं क्या बाबा कहींसे बहता हुआ आया था । देखे यमुना, तुम्हारा भाई वह साला पृथ्वी—साला एकदम नीच, खुशामदी, जुआचोर, लुच्चा, रंडीबाज—

यमुना—पैरों पड़ती हूँ प्रभू ! बस, रहने दे । मेरे मनको व्यथा न पहुँचाओ । मेरा जी बहुत दुखता है ।

पाभू०—ओः ! इनका जी दुखता है ते मानो मुझे नींद नहीं आती । सच कहूँगा, उसमें डर काहेका ; जरूर कहूँगा । मैं साबित किये देता हूँ कि पृथ्वीकी स्त्री पूरी तौरसे वेश्या थी । तुम्हारे भाई जयमलने उसे रक्खा था । उसके सोनेकी कोठरीमें जयमलकी लाश निकली थी । तेरे भाई पृथ्वीने—साधके भाई पृथ्वीने—तरे प्यारे भाई पृथ्वीने—उससे ब्याह किया है कि नहीं ?—जायगी कहाँ ? सुने जा—

यमुना—तो मेरे आगे कहनेसे क्या होगा ?

पाभू०—क्या होगा ? होगा यह कि मैं तेरा सिर मुड़ाकर, सिर पर मट्ठा डालकर, गधेकी पीठ पर चढ़ाकर—तुझे देशसे निकाल दूँगा । ऐसे बापकी लड़की, ऐसे भाईकी बहनको अपने घरमें रखना कलंककी बात है ।

यमुना—तो वही करो ।

पाभू०—लेकिन उससे पहले तेरे सामने यह तेरे बापके नाम पर एक जूता—तेरे भाई के नाम पर दो जूते—

(जमीन पर जूते मारना)

पाभू०—क्यों ! हाः हाः हाः ।

(प्रस्थान)

यमुना—यही स्वामी मेरे देवता हैं ! मा जगदम्बे !—इस अन्धकारमें राह दिखाओ; अब नहीं सहा जाता ।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य ।

स्थान—जंगलमें सेनाका पड़ाव ।

जगह-जगह पर आग जल रही है ।

समय—रात ।

[सूर्यमल और सारंगदेव]

सूर्य०—जितना मुझसे हो सकता था, उतना किया । नगरसे नगरमें, वनसे वनमें भागते भागते अन्तको इस बातुगे-जंगलमें आश्रय लिया है । अपना काम करनेमें मैंने कुछ कसर नहीं रक्खी ।

सारंग०—अपना काम आपने नहीं किया ।

सूर्य०—अपना काम मैंने नहीं किया ? हाय भगवान्, भाईके विरुद्ध कुचक्र रचा; विश्वासघात किया; भतीजेके ऊपर तरवार चलाई । और तुम ? तुम लूटके लिए व्यग्र हो रहे हो !

सारंग०—नहीं तो सिपाहियोंको तनख़्वाह कहाँसे दी जायगी? आपके पास ख़ज़ाना नहीं है; राज्यका भी रुपया नहीं है।

सूर्य०—इस तरह बुरे ढंगसे इस लड़ाईका ख़र्च चलाना होगा, यह जानता तो कभी इसमें हाथ न डालता।

सारंग०—क्यों हाथ डाला था?—इसमें किसका दोष है?

सूर्य०—तुम्हारा दोष है। तुम्हारी सलाहसे ही यह सर्वनाश हुआ है।

सारंग०—जो होना था सो हो गया। अब आगेके लिए उपाय सोचिए।—वह घोड़ेकी टापोंका शब्द है क्या?—शत्रु है क्या?

सूर्य०—यह निश्चय ही भतीजा पृथ्वी है। तरवार कहाँ है?

(तरवार लेना)

[वेगसे पृथ्वी और ताराका प्रवेश]

पृथ्वी०—यह है। (सूर्यमल पर हमला करना और उनका गिरना)

सारंग०—ओ पृथ्वीराज! तुम्हारे चचाके शरीरमें अब वह शक्ति नहीं है।

पृथ्वी०—चुप रह विद्रोही। (सूर्यमलसे) हारना स्वीकार करो।

सूर्य०—स्वीकार करता हूँ, पृथ्वी!

(पृथ्वीराज सूर्यमलको छोड़ देते हैं)

सूर्य०—पृथ्वी! तुझसे हार स्वीकार करता हूँ, इसमें मुझे लज्जा नहीं है! मैंने तुझे गोदमें खिलाकर इतना बड़ा किया है। इस सुन्दर सुगठित शरीरको धीरे धीरे चन्द्रमाकी कलाओंके समान बढ़ते देखा है। इसका हरएक हिस्सा, हरएक अंग-प्रत्यंग, इसकी हरएक चेष्टा मेरे निकट परिचित है। इस शरीरपर शस्त्र चलाते मेरी छाती फटने लगती है रे पृथ्वी।

पृथ्वी०—क्या करूँ चचा ! जब तुमने ही यह युद्धकी आग सुलगाई है—

सूर्य०—यह न सोच तू पृथ्वी कि मैं मृत्युके भयसे यह बात कह रहा हूँ । चित्तौरकी वीरमण्डलीको ले आ; देख—इस समय भी उनसे लड़ सकता हूँ या नहीं । लेकिन तुझसे अब नहीं ।

पृथ्वी०—क्यों चचा, युद्धमें तो अपने परायेका ख़याल नहीं किया जाता ।

सूर्य०—ठीक है ! लेकिन मैंने सोचकर देख लिया कि तुझसे युद्धमें मेरे जीतनेमें ही अधिक हानि है । युद्धमें अगर मैं मरूँ, तो मेरा क्या ? मेरे सन्तान नहीं है । मेरे लिए कोई रोनेवाले नहीं हैं । लेकिन अगर तू मारा गया, तो चित्तौरका क्या होगा ?—सदाके लिए मेरे मुँहमें स्याही पुत जायगी । तुझसे अब नहीं । चित्तौरके चुने हुए सौ जवान ले आ । अकेले उनसे युद्ध करूँगा । लेकिन तुझसे अब नहीं ।

पृथ्वी०—(सिर झुकाकर) समझ गया चचा, इतने दिनके बाद समझ गया । युद्धमें क्यों तुम्हारा तमाम शरीर कट-फट गया, और मेरे शरीरमें ज़रासा दाग़ नहीं आया, सो अब समझ गया । चचा, क्षमा करो ।

सूर्य०—क्षमा क्या करूँगा ! अपने योग्य काम तू कर रहा है । मैं विद्रोही हूँ; मैं ही क्षमाका पात्र हूँ ।

पृथ्वी०—उस क्षमाका उपाय मैं करूँगा ।—नहीं चचा, अब नहीं;—मुझे आशीर्वाद दीजिए ।

सूर्य०—(आशीर्वाद देकर) यह बालक कौन है ?

पृथ्वी०—यह मेरी स्त्री, ताराबाई है !

सूर्य०—बेटी तुम्हीं तारा हो ! तुम्हीं वह वीरांगना हो, जिसने अपने हाथोंसे मुजफ्फ़रको क़ैद किया था ! हाय बेटी, जिस देशमें ऐसी वीर स्त्रियाँ पैदा होती हैं, उसी देशमें क्या ऐसे कायर मर्द पैदा होते हैं कि अपने भाईके विरुद्ध युद्ध करनेमें नीच विधर्मी म्लेच्छकी सहायता लेते हैं ?—बेटी, तुम बहुत दिन-तक जियो ।

सारंग०—तो क्या समझूँ कि यह युद्ध यहीं पर समाप्त हो गया ।

पृथ्वी०—चचाके साथ युद्धकी इतिश्री यहीं हो गई ।

तारा—चची कहाँ हैं चचाजी ?

सूर्य०—कालीके मन्दिरमें गई थी । (सारंगसे) क्या अभी तक नहीं लौटी ?

सारंग०—मालूम नहीं । (स्वगत) बीच बीचमें वह पगलीसी जान पड़ने लगती हैं । मेरे साथ उनका बर्ताव विचित्र है । कभी कभी पागलोंकी तरह वह मुझे बेटा कहने लगती हैं !

पृथ्वी०—यहाँ क्या कालीका मंदिर है ?

सारंग०—हाँ है ।

पृथ्वी०—अच्छी बात है ! चचा, कल हम तुम दोनों वहाँ जाकर माताको पूजा समर्पण करके यह युद्ध समाप्त करेंगे । बलिदानका प्रबंध मैं करूँगा ।

सूर्य०—यही हो ।

पृथ्वी०—तो आज मैं यहीं रह जाऊँ ?

सूर्य०—हाँ !

पृथ्वी०—अच्छा चचा, हमारे आनेके पहले तुम लोग क्या कर रहे थे ?

सूर्य०—यही अनाप-शनाप बक रहे थे।

पृथ्वी०—तुम्हारे सिर पर ही जब मुझ जैसा तुम्हारा शत्रु खड़ा था, तब भी तुम इस तरह लापर्वाहीसे बैठे अनाप-शनाप बक रहे थे?

सूर्य०—क्या करूँ पृथ्वी? इसके सिवा और उपाय क्या है?

पृथ्वी०—चलो, भीतर चलें।

(सबका प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—कालीका मंदिर।

समय—सवेरा। बादल घिरे हुए हैं।

[अकेले पृथ्वीराज]

पृथ्वी०—मैया काली! आज करूँगा आपकी
पूजा—नरबलि देकर। जगदम्बे! यहाँ
मेरा या सारंगदेवका, छिन्न हो,
सिर लोटेगा—इन चरणोंमें आपके।
आज महापूजा होगी।—सारंग वह
आता है!

[सारंगदेवका प्रवेश]

हैं चचा कहाँ?

सारंग०— निकला बहुत
खून, हुए कमजोर, पलँग पर हैं पड़े।
मैं आया हूँ यहाँ अकेला ही

पृथ्वी०— हुआ
अच्छा हो यह।

सारंग०— पृथ्वी ! बलिका पशु कहाँ
है ?

पृथ्वी०— बलिपशु है ।

सारंग०— कहाँ, देख पड़ता नहीं

पृथ्वी०—कोई भी । सारंगदेव ! बस बलि यहाँ
तुम हो या मैं ।

सारंग०— यह क्या ?

पृथ्वी०— यह विद्रोहकी
आग लगाई, सुलगाई जिसने यहाँ,
वह तुम हो सारंग ! प्रतिज्ञा कर चुका
हूँ, कालीके निकट—आज—इस युद्धका
अन्त करूँगा, नरबलि देकर मैं तुम्हें
विद्रोही ! विद्रोह तुम्हारे रक्तसे
शान्त करूँगा ! नरबलि देकर इस घड़ी
देवीको मैं तृप्त करूँगा रक्तसे ।—
समझे ? वह बलि, तुम हो, या मैं । म्यानसे
खींचो बस तरवार ।

सारंग०— हानि क्या है—यही
हो ! खींचो तरवार । (तरवार निकालना)
—याद रखना मगर—
पृथ्वी !—मैं हूँ नहीं तुम्हारा स्नेहसे
विवश, सुकोमल-प्रकृति चचा; यह जान लो ।
दया करूँगा नहीं । तुम्हारे रक्तकी
प्यासी यह तरवार, छोड़नेकी नहीं !

पृथ्वी०—दग़ाबाज, तू पहले अपनेको बचा ।

(युद्ध होना । सारंगदेवका पतन ।
उसका सिर कटकर दूर जा पड़ता है)

हो समाप्त यह युद्ध, इसीके रक्तसे।
जब मैं असली विद्रोहीका सिर कटा
रक्खूँगा सामने पिताके, और फिर
दोनो घुटने टेक, हाथ भी जोड़कर,
क्षमा-प्रार्थना अगर करूँगा, तब मुझे
निश्चय है, यह खता माफ़ हो जायगी
चाचाकी।

[तमसाका प्रवेश]

तमसा— क्या हुआ! हाय यह क्या हुआ!
किसने हत्या कर डाली सारंगकी!—
पृथ्वी, तूने? पृथ्वी, तूने क्या किया?

पृथ्वी०—नरबलि देकर कालीका पूजन किया।

तमसा—की कालीकी पूजा!—कालीकी नहीं
पूजा की है, पृथ्वी। मेरा ही किया
सर्वनाश यह। निठुर!—जानता है इसे
पृथ्वी तू? सारंगदेव यह कौन है?

पृथ्वी०—जानूँ मैं, सारंगदेव मेवारके
राजघरानेमेंसे ही पैदा हुआ—
राना लाखाका बेटा था।

तमसा— हाय रे
पृथ्वी!—तो अपने कलंकका हाल मैं
कहती हूँ।—सारंगदेव सन्तान है
मेरी।

पृथ्वी०— हैं ! सन्तान तुम्हारी ?

तमसा— सत्य ही

मेरी है सन्तान। मगर—पृथ्वी, मगर

पिता सूर्यमल नहीं।

पृथ्वी०— अरे उन्मादिनी,

क्या कहती है ?

तमसा— पृथ्वी, मैं पागल नहीं।

—इस कलंककी करो जगत्में घोषणा।

नगर नगरमें घर घरमें, सबसे कहो।

अब न डरूँ मैं। सभी गया। अब किस लिए

डरूँ ? जगत्में। कुछ भी जिसके पास है,

वह डरता है। नहीं रहा कुछ भी। हुआ

मेरे लेखे आज विश्व मरुभूमि सा।

सुख, दुख, आशा, प्रीति, सभी कुछ धो गया—

इस भारी बहियामें—मेरे हृदयसे।

अब न किसीको डरूँ,—प्रलयकी आग, आ,

आ तू—हो प्रज्वलित—जला दे—भस्म कर !

(पागलोंकी तरह प्रस्थान)

पृथ्वी०—(हाथोंसे मुँह ढककर)

नारी ! यह क्या संभव है !—जाया हुई

अविश्वासिनी ? नारी ! नारी ! क्या किया—

अरे क्या किया तूने ! तू जो छोड़ दे

सतीधर्म, तो सब बन्धन संसारके

ढीले होंगे—विशृंखला हो जायगी—

धर्म मिटेगा। तुझसे ही जो हो दगा,

अविश्वासिनी तू ही जो हो जायगी,
विश्व बीच विश्वास कहाँ रह जायगा ?
भोजनमें विष, तकियेके नीचे छुरी
छिपी रहेगी; संन्यासी हो जायँगे
सब गृहस्थ होकर विरक्त संसारसे !
कर बाहरके काम, थका, ढीला हुआ
नर आता है अपने घरमें—नित्य ही—
प्राणप्रियाके स्निग्ध प्रेममें दुख सभी,
पाप सभी, अपमान सभी धो डालने।
आकर देखे अगर, प्रेमका स्रोत वह
सूख गया, तो कहाँ जायगा फिर पुरुष ?
नर होकर उद्भ्रान्त, कर्मके चक्रमें
दिग्दिगन्तमें फिरा करे ! तूने उसे
माध्याकर्षणके प्रभावसे बाँध-सा
रक्खा है। हा जाया !–जो विच्छिन्न हो
वह आकर्षण-शक्ति, फिर कहाँ जायगा
पुरुष !–उठेंगे सब पवित्र सम्बन्ध ही
इस दुनियासे !–पिता, पुत्र, भाई, सगा—
कौन रहेगा किसका ? नाते ये सभी
मानेगा फिर कौन ? डाह, सन्देह, छल,
गृहविवादसे घर गृहस्थका—नष्ट हो—
खँड़हर, एकाकार, महा मरुभूमि सा
महाशून्य, दारुण मसान बन जायगा !

(प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—रानाका बाहरी बैठकखाना।

समय—प्रातःकाल।

[अकेले रायमल]

राय०—फिर आया है पुत्र आज; रणमें विजय
पाकर, लेकर पत्नीको। है शुभ घड़ी
आज। मगर इस रणमें मैंने रत्न भी
एक गँवाया;—अतुलनीय, अनमोल;—वह
आज्ञाकारी अपना भाई सूर्यमल।—
भूल सकूँगा नहीं चोट यह जन्मभर!

[पृथ्वीराज और उनके पीछे ताराका प्रवेश]

(रानाको प्रणाम करना)

राय०—जियो बहुत दिन पुत्र!—घोर इस युद्धमें
मैंने पाई विजय, तुम्हारे ज़ोरसे।
—तारा, बेटी, आओ! तुम जुगजुग जियो।
तुम लाई हो शान्ति उदयपुर-राज्यके
राजवंशमें कल्याणी! अभिमानका
अन्तर जो था पिता-पुत्रके बीचमें
उसे दूर कर दिया। बड़ी तुममें दया
है पुत्री; इसलिए बुलाये ही बिना
आई हो तुम यहाँ—अयाचित भावसे!

तारा०—पूज्य पिता, मैं अपने ही अधिकारसे
अपने घरमें आई हूँ ।

राय०— आई नहीं,
स्नेहमयी, तुम आश्रय पानेके लिए;
आई हो तुम हँसती—माताकी तरह—
अपराधी निजपुत्र उठाने गोदमें ।
—पृथ्वी, मैं अब बिलकुल ही बूढ़ा हुआ ।
इच्छा है, यह राज्य-भार देकर तुम्हें
अवसर लूँगा । वनमें जा, एकान्त में,
अपना जीवन शेष बिताऊँगा ।

तारा— कहाँ
जाओगे । मैं जाने ही दूँगी नहीं ।
तात ! करेंगे हम सेवा सब ही तरह ।
लादेंगे उस तरह बुढ़ापा आपका—
जैसे लादें जड़ें जीर्णवट-भारको ।

राय०—पृथ्वी, शास्त्रोंका विधान मैं जानता—
क्षत्रियको है योग्य योग ही अन्तमें ।
मैंने की अवहेला अबतक शास्त्रके
इस विधानकी; शायद कारण है यही,
जो इस घरमें—राजघरानेमें—मचा
इतना झगड़ा, मारकाट, उत्पात सब ।
—समय हो गया सभाभवनमें, अब चलूँ ।

(प्रस्थान)

पृथ्वी०—(स्वगत) मैं राना हूँ आज राज्य-मेवारका !
सत्य नहीं हो सकी चारणीकी कही

वाणी,—"होंगे संग राज्य-मेवारके
राना।" भाई संग! कहाँ तुम आज हो!
अति उदार है हृदय तुम्हारा। आपसे
राज्य छोड़कर, देश छोड़कर, चल दिये;
वनवासी हो गये। तुम्हारे साथ तो
मैंने ही अन्याय किया; रूखा पड़ा।
अपने भुजबलके घमंडसे उस घड़ी
मैंने अत्याचार किया। करना क्षमा।

तारा—सोच रहे हो क्या प्यारे तुम देरसे?

पृथ्वी०—सोच रहा हूँ?—प्रिये, प्रतिज्ञा यह नहीं
की मैंने—जब जो कुछ सोचूँगा, वही
तुम्हें बता दूँगा मैं।

[चोपदारका प्रवेश]

चोप०— आया है यहाँ
दूत सिरोहीसे चिट्ठी लेकर; उसे
क्या आज्ञा है स्वामी—

पृथ्वी०— क्या? चिट्ठी? कहाँ—
किसकी चिट्ठी? देखूँ! यमुनाकी लिखी
चिट्ठी है? (पत्र लेना और पढ़ना। चोपदारका
प्रस्थान) जो सोचा था—

तारा— यह पत्र है
किसका प्यारे?

पृथ्वी०— तुमको इसकी क्या पड़ी—
तारा! (वेगसे प्रस्थान)

तारा— जबसे अन्त लड़ाईकाहुआ
तबसे प्रियतमका स्वभाव ऐसा हुआ ।—
बात बातमें आगभभूका हो उठें ।
कभी ताकते ऐसी तीखी दृष्टिसे,
डर जाती हूँ; आँखें लेती हूँ झुका ।
ऐसा यह क्यों हुआ ? मात जगदम्बिके—
क्यों यह ऐसा हुआ ।—समझ पड़ता नहीं !

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—गंभीरा नदीका किनारा ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[उदास वेषसे अकेली तमसा]

तमसा—गया, गया—सब गया । जो नहीं था, वह नहीं हुआ । जो था, वह चला गया । स्त्रीका धर्म गया, पतिका प्रेम गया । अन्तको, जिसके लिए इतना षड्यन्त्र रचा, इतनी चेष्टा की, वह भी गया ।—इतने दिनोंमें समझी कि अधर्मकी राहमें सुख नहीं होता । अधर्मका दण्ड एक-न-एक दिन मिलता ही है । वह चाहे इस लोकमें मिले और चाहे परलोकमें मिले । गया, गया, सब गया । फिर मैं ही क्यों पड़ी रहूँ । आज इस गंभीराके प्रवाह में फाँद पड़ूँगी । उसके बाद ?—परलोकमें नरककी आगमें जलूँगी ? जलूँ ! उससे मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं । जिन्दगीमें ही नरककी यन्त्रणा भोगना शुरू हो गया है ।—सारंग ! सारंग !—क्यों तुझे उस दिन मैंने देखा ?—ममताको दबाकर

लोकलज्जाके भयसे तुझको उस दिन नदोके प्रवाहमें बहा दिया था; किसने मेरा सर्वनाश करनेके लिए तुझे बचाया ? क्यों तू उस दिन मेरे सामने आया था ?—आहा ! आँसू-भरी कातरदृष्टिसे तू मुझसे खानेको माँग रहा था, और यह नहीं जानता था कि यही मेरी मा है ! अपनी जिन्दगीभरमें तू इस बातको जान भी नहीं सका । सोचा था; चित्तौरके सिंहासन पर तुझे बिठाकर वह बात कहूँगी । वह सुयोग नहीं मिल सका । सारंग ! सारंग ! मेरे सारंग ! मेरे प्राणोंसे प्यारे बच्चे !–ओः—

[गाते-गाते एक फ़क़ीरका प्रवेश]

धुन कव्वाली ।

'मेरा-मेरा' कहता फिरता; यह मेरा, वह मेरा है ;
अपना लिये रहो तुम भाई, लेना मत जो मेरा है ।
मेरा घर, मेरा दरवाज़ा; 'मेरा' मुझको मीठा है ;
'मेरे' का ही सब झगड़ा है, 'मेरे' की ही चिन्ता है ।
मेरे लड़के–लड़की, मेरी जोरू, मेरी माता है,
मेरा पिता, सभी कहते, पर साथ न कोई जाता है ।
इतना प्यारा तन है, वह भी, छोड़ यहींपर जाना है ;
मेरा कहिए किसे ? जगत्में कोई नहीं किसीका है ।

तमसा—यह भी तो ठीक है । मैं किसकी हूँ ?—कौन मेरा है ?—इस संसारमें कौन किसका है ? किसे अपना कहकर पुकारती हूँ ? बड़े आग्रहसे, बड़े जोशसे किसे छातीसे लगा रखते हैं, छातीसे लगा कर भी तृप्ति नहीं होती; जिसे अपने प्राणोंके साथ रखना चाहते हैं, उसे जैसे ही मृत्युने अपना कालदण्ड छुआ दिया, वैसे ही वह हमारा कोई भी नहीं रहा—एकदम ग़ैर हो गया !—

एकदम ग़ैर हो गया !—कोई भी नहीं रहा। वह माया-मोहके फन्देको तुड़ाकर चला जाता है, प्रेम भूलकर चला जाता है, निर्दय भावसे न जानें कहाँ चला जाता है—फिर नहीं देख पड़ता, फिर देखनेको नहीं मिलता ! स्वर्ग-पृथ्वी—पाताल खोजने पर भी फिर एकबार उसे नहीं देख पाते । कैसा मनुष्य-जन्म बनाया है दयामय ? (लंबी सांस लेना)

[दो सैनिकोंका प्रवेश]

१ सैनिक—पकड़ लिये गये ।

२ सैनिक—पकड़ नहीं लिये गये । सर्यमलने आप ही अपनेको पकड़ा दिया ।

१ सैनिक—आप क्यों पकड़ा दिया ?

२ सैनिक—कौन जाने। जब पकड़ जानेसे मौतका होना निश्चित जाना था, तब अपनेको क्यों पकड़ा दिया—यह बेशक एक कठिन समस्या है ।

१ सैनिक—ना जी । सूर्यमल, हज़ार हो, रानाके भाई हैं। राना उन्हें छोड़ देंगे ।

२ सैनिक—ऊँहू: ! राना इस तरहके आदमी नहीं हैं । न्याय-विचारके समय वह भाई या जातिवालेका कुछ भी ख़याल नहीं करते ।

१ सैनिक—सूर्यमलका न्याय-विचार कब होगा ?

२ सैनिक—कल।

(दोनोंका प्रस्थान)

तमसा—अपनेको पकड़ा दिया ! अन्तको पकड़ा दिया !—इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ये लोग नहीं जानते कि उन्होंने आप

अपनेको क्यों पकड़ा दिया। मैं जानती हूँ। उन्होंने मनके क्षोभसे, यन्त्रणासे और लज्जाके मारे अपनेको पकड़ा दिया है। इसी कारण वह अपनी इच्छासे मौतको गले लगाने जा रहे हैं।—अच्छा, मरनेसे पहले एक अच्छा काम करके क्यों न देखूँ, क्या होता है।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—रानाकी सभा।

समय—सबेरा।

[सिंहासन पर रायमल बैठे है। सामने मुसाहब और नौकर-चाकर हैं। पास ही पृथ्वीराज हैं। सामने क़ैदी सूर्यमल खड़े हैं]

राय०—सुनो सूर्यमल! आज, इस समय, तुम नहीं
मेरे भाई;—दण्डनीय हो! शत्रु हो!
दग़ाबाज़ सेनापति, विद्रोही प्रजा-
साधारण हो। विद्रोहीको आज मैं
दूँगा समुचित दण्ड!

सूर्य०— बस, यही ठीक है।
महाराज! मैं वही दण्ड चाहूँ।

राय०— तुम्हें
कहना है?

राय०— ना, कुछ भी कहना है नहीं।
मृत्यु—सूर्यमल!—विद्रोहीका दण्ड है;
यह तम जानो!

प्यारे भाई !—जरा उठाओ तो सही
नीचे मुँहको; देखो मेरी ओर तो—
अब मैं राजा नहीं।—सूर्यमल—इस समय—
मैं भाई हूँ वही तुम्हारा ! हृदयसे
एकबार तो लग जाओ अन्तिम समय।
—इसी गोदमें मैंने तुमको स्नेहसे,
आदरसे दुलराया;—पाला भी तुम्हें
मेरे भाई ! आज तुम्हें इस हाथसे
मुझको देना पड़ा मृत्युका दण्ड भी !—
विधि-विडम्बना !

सूर्य०— विधि-विडम्बना ही इसे
समझूँ ! इसको भाईजी, तुम क्या करो ?

राय०—सूर्य ! सूर्य ! तुम वही सूर्यमल क्यों नहीं
रहे ?—वही औदार्य, सरलता, स्नेहसे
पूर्ण सूर्यमल ? तुमने मुझसे क्यों नहीं
कहा—तुम्हें राजा होने की चाह है।
देता तुमको अनायास ही राज्य मैं

सूर्य०—भाई, करना क्षमा;—मृत्युके बाद तुम
करना मुझको क्षमा। भूल जाना सभी
अपराधोंको—मुझे मूर्ख भाई समझ।
भाई, मैं हूँ मूढ़; समझ मुझमें नहीं।

राय०—नहीं नहीं, यह काम तुम्हारा तो कभी
नहीं सूर्यमल।—कहो कहो, किसने तुम्हें
यह सलाह दी ? तुम्हें शिखण्डी-सा बना—
आगे करके—किसने मेरे हृदयमें

मारा यह विषबुझा बाण ? वह कौन है ?
कहो—,

सूर्य०— कहूँगा नहीं; न कहनेके लिए
कहना भाई आज।

राय०— क्या किया, क्या किया,
भाई तुमने ?—हाय, क्या कहूँ ? हृदयसे
उठा दिया विश्वास तुम्हारे इस घृणित
नीच कार्यने। देखूँ नीलाकाशको;
शंका होती, उसके भीतर वज्रकी
सेल छिपी है। देखूँ सोता स्वच्छ, तो
होता है सन्देह—ज़हर उसमें मिला
है शायद। संगीत सुनूँ, सोचूँ—छिपा
इसमें कुछ विद्रूप। —सूर्यमल !—क्या किया
यह मेरे इस बूढ़ेपनमें !

सूर्य०— आप सब
भूल जाइए, इसे बुरा सपना समझ।
यही सोचिए, धूमकेतु आकाशमें
आकर जाता चला; किन्तु चिरदिन रहें
स्थिर सारे नक्षत्र वहीं पर।—सोचिए,
भूमिकम्पका विप्लव क्षणभरके लिए
आता, जाता चला; किन्तु पृथ्वी रहे
हरी-भरी, परिपूर्ण शान्तिसे, धैर्यसे
पहलेहीकी तरह।—करो, भाई, क्षमा।
बिदा करो अब मुझको।

राय०— भाई सूर्यमल !
क्षमा कर दिया मैंने । यों पाओ वहाँ।
ईश्वरसे भी क्षमा मृत्युके बाद तुम ।
[भीड़ फाड़कर तमसाका निकलना]
तमसा—कहाँ जा रहे ! जाना मत । ठहरो ज़रा
देव—
[सूर्यमलका स्तंभित भावसे खड़े हो जाना]
खड़े हो दम भर; (रायमलके पैरों पर गिरकर)
रानाजी सुनो !
कुछ कहना है ।
सूर्य०— यह स्त्री है उन्मादिनी;
सुनो न इसकी बात ।
तमसा— नहीं, राना-प्रभो—
सुनना होगा ।
सूर्य०— उसके पहले ही मुझे
मृत्युदण्ड दो ।
मसा— नहीं, सुनो—तुम भी सुनो ।—
हाँ रानाजी, सुनिए । दोषी हैं नहीं—
स्वामी । दोषी मैं हूँ । यह विद्रोहकी
आग जलाई मैंने ही । दी मन्त्रणा
मैंने । मैंने बुलवाया चित्तौरमें
मालवपतिको । मेरा ही षड्यन्त्र है—
मेरा ।
राय०— तेरा ?

तमसा—　　　　हाँ, मेरा ही । आप यह
　　पूछेंगे—मैंने कुचक्र यह क्यों रचा?
　　क्या पूछेंगे ? सुनिए, मैंने क्यों रचा ।

सूर्य०—महाराज मत सुनिएगा ! मैं प्रार्थना
　　करता हूँ ।

तमसा—　　　　सुनना ही होगा । मैं स्वयं
　　अपना घोर कलंक जगत्के सामने
　　प्रकट करूँगी; विष उगलूँगी; पापको—
　　रानाजी—स्वीकार करूँगी । जानते
　　होंगे तो सारंगदेवको ? पुत्र था
　　वह मेरा ! पर पिता नहीं यह सूर्यमल ।

राय०—सच है ! औरत पागल है !

तमसा— 　　　　राना सुनो—
　　पागल हूँ मैं, लेकिन जो कुछ कह रही
　　हूँ, वह पागलका प्रलाप बिलकुल नहीं ।
　　—उसे बनानेको राना मेवारका
　　मैंने की थी गुप्त मन्त्रणा यह ।—मगर
　　व्यर्थ हुई वह । पृथ्वी जो इस युद्धमें
　　पहुँच न जाता, तो हो सकती थी सफल ।
　　आप जानते हैं, पृथ्वीको यह ख़बर
　　भेजी किसने ? किसने आकर युद्धमें
　　पत्त आपका लेनेका अनुरोध कर
　　पत्र लिखा था पृथ्वीको ? इन सूर्यमल
　　ने ही यह सब किया ।

राय०— सूर्यमलने !!! स्वयं
विद्रोहीने !!! क्या यह सच है सूर्यमल ?—

तमसा—सच है। यद्यपि इस कुचक्रमें फँस गये
थे यह तो भी समझी अपनी भूल जब,
पत्र एक तब लिखा भतीजेको;—यहाँ
आकर करनेको सहायता आपकी।

पृथ्वी०—यह सच है। मैं भूल गया; अबतक नहीं
कहा आपसे पिता।

तमसा— सत्य सब खुल गया।
विद्रोही हूँ मैं यथार्थमें। दीजिए
मुझे मृत्युका दण्ड।

राय०— न अबलाको दिया
जा सकता है मृत्युदण्ड।

सूर्य०— तमसा, यहाँ—
मेरे मरनेके पहले ही—क्यों कहो
यह कलंककी बात ?

तमसा— क्यों कहो ! अभीतक,
जीवनभरमें, नहीं किया कोई कभी
पुण्यकर्म,—सो आज कर लिया। मैं क्षमा
चाहूँ—यह सोचना नहीं स्वामी। मुझे
इसका भी अधिकार नहीं अब रह गया।
स्वार्थसिद्धिके लिए जन्मसे छल किया;
ढोंग प्रेमका रचा। न मैं चाहूँ क्षमा।
पुण्य किया था कभी नहीं; जाना न था
सुख उसका; इसलिए आज देखा उसे।

देखा, उसमें सुख है—स्वामी, बड़ा सुख;—
पापकर्ममें मिले सुखोंसे भी अधिक
वह सुख है। अब जीवनके इतिहासका
खुला नया अध्याय। तुच्छ इतना—अहो—
स्त्री-जीवन है! राजदण्ड इतना घृणित,
वह भी उसको छूनेमें करता घृणा!
उस जीवनको यथाशक्ति मैं आजसे
पुण्यकर्ममें और भलाई में लगा
दूँगी। (प्रस्थान)

राय०— बन्धनमुक्त सूर्यमलको करो।

(सबका जाना)

चौथा दृश्य।

स्थान—राना रायमलका अन्तःपुर।

समय—सबेरा।

[शूरतान और उनकी रानी]

शूर०—तुमसे मैं बराबर यही कहता चला आरहा हूँ रानी, कि चुपचाप बैठी रहो; घटनायें आप ही ठीक-ठीक सिलसिलेवार होती चली जायँगी। देखो, वही हुआ कि नहीं। घटनाओंका सिलसिला ऐसी नर्मीके साथ होता चला जा रहा है कि इसके बाद क्या होगा, सो कुछ समझ नहीं पड़ता।

रानी—और क्या होगा?

शूर०—मैं चित्तौरका राना भी हो सकता हूँ, और चाहूँ तो तुर्कोंका सुलतान भी हो सकता हूँ। वह देखो, टोड़ा दुश्मनोंके

हाथसे मिल गया; इस समय मैं फिर वही पहलेका राजा हूँ । इसके सिवा लड़कीके लिए एक ऐसा वर मिल गया कि मैं एक ही साँसमें एकदम राना रायमलका समधी बन गया । इसके सिवा तुमने सुना है, रानाने ढिंढोरा पिटवा दिया है कि वह एक महीनेके बाद पृथ्वीको राजकाज सौंपकर युवराज बना देंगे । तो इसका फल यह ठहरा कि पृथ्वीराज हुए महारानां, तारा हुई महारानी—और मैं एक ही दौड़में महारानाका ससुर हो गया।

रानी—इस गौरवके लिए अहंकार करनेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती ? इस पराये दिये राज्यका सुख भोगनेकी अपेक्षा तो वनवासी रहना अच्छा ।

शूर०—इस स्त्रियोंकी जातिको किसी तरह सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता । जब वनमें रहता था, तब उसमें 'मिनमिन' लगी हुई थी; और आज समधी की हैसियतसे न्यौता पाकर रानाके यहाँ चित्तौरमें आकर राजभोग खा रहा हूँ, तो उसमें भी 'मिनमिन' लगी हुई है । नतीजा यह निकला कि मिनमिन किये जाना ही स्त्रीजातिका स्वभाव है,—"यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।" अच्छा, यह पराया दिया राज्य न हो चूल्हेमें जाय—यह राजभोग चूल्हेमें जाय । लेकिन ताराको क्या इससे अच्छा वर मिल सकता था ?

रानी—यह वर तो विधाताने ही जुटा दिया है ।

शूर०—योग्य व्यक्तिको विधाता इसी तरह भेज देते हैं ।

रानी—तुम तो इस तरफ़से बिलकुल ला-पर्वाह थे ।

शूर०—और तुमने तो तत्पर ही होकर सब काम किया था । वचन-बहादुर बनकर एक जयमल-विभ्राट् तो खड़ा कर ही दिया था ।

रानी—क्यों, वह क्या बुरा था ?

शूर०—बुरा ! उसकी अपेक्षा, वह जो साँड़ खड़ा है, उससे ताराका ब्याह कर लेना अधिक संभव था । तुमने तो बहुत कोशिश की थी, पर उसने कहाँ माना !

रानी—ब्याह करती या नहीं सो तुम देखते, अगर वह मोहित-सिंह बीचमें विघ्न न बन जाता ।

शूर०—एँ:, स्त्रियोंकी जाति बिलकुल ही बुद्धि नहीं रखती । अगर स्त्रीके कठिन सिरपर गौतममुनिके तर्कशास्त्रको खींच मारिए तो वह न्यायशास्त्र ही चूर्ण हो जायगा, स्त्रीके सिरका कुछ नहीं हो सकता ।—मोहितसिंहने क्या किया ! वह तो जयमलके आनेके पहलेही चला गया था ।

रानी—चला गया था सही; लेकिन फिर मुझे मालूम हुआ कि वह ताराके हृदयमें अपनी मूर्ति अंकित करके छोड़ गया था ।

शूर०—हाँ ! तुम्हारे हृदयमें तो नहीं अंकित कर गया ?—(गंभीर भावसे)—रानी, यह न होता ।

रानी—क्या न होता ?

शूर०—तारा मोहितसिंहसे भी ब्याह न करती, जयमलसे भी ब्याह न करती । मैं सदासे देखता आ रहा हूँ, उसकी दृष्टि इसी चित्तौरके सिंहासन पर थी ।—तारा जानती थी कि एक-न-एक दिन सिंहासन पर पृथ्वीराज ही बैठेंगे । यह क्या बच्चोंका खेल था । तारा मेरी ही तो लड़की है । मैं बराबर इधर ध्यान लगाये हुए था । इसीसे अबतक चुप था ।

रानी—तुमने इसमें क्या किया ? घटनाओंका सिलसिला ही कुछ ऐसा आ बैठा कि यह सब होगया ।

शूर०—रानी! जो लोग झींगा मछली पकड़ते हैं वे पानीको उथलपुथलकर—कीचड़ घोलकर—उसकी दुर्गन्ध फैलाकर जाल घुमाते फिरते हैं। लेकिन जो लोग रोहू मछली पकड़ते हैं वे जाल डालकर चुप साधे बैठे रहते हैं।—अब चलो, राजभोगका यथायोग्य उपयोग किया जाय—सूक्ष्म बुद्धिका सञ्चालन करनेसे स्थूल शरीर एकदम शिथिल हो पड़ा है।

रानी—(हँसकर) विधाता ने तुम्हें पेटू ब्राह्मण न बनाकर क्षत्रिय क्यों बनाया?

शूर०—विधाताकी ऐसी ही और भी दो-एक भूलें मैं तुमको दिखा दूँगा। केवल एक अभी दिखाये देता हूँ—यही कि अगर वह तुमको स्त्री न बनाकर राजा पुरुके सेनापतिके रूपमें उत्पन्न करते, तो शायद राजा पुरु सिकन्दरशाहसे युद्धमें न हारते। चलो।

(दोनोंका प्रस्थान)

[दूसरी ओरसे पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—मैंने सुनना नहीं चाहा! एकाएक कानमें भनक पड़ गई। समझ गया, सब समझ गया। पानीकी तरह सब साफ़ हो गया। मैं इन लोगोंकी सांसारिक उन्नतिके मार्गकी केवल एक सीढ़ी हूँ?—षडयन्त्र है! षड्यन्त्र है! नहीं। यही कैसे कहूँ? मैंने तो आप ही अपनेको धरवा दिया। मोहितसिंह कौन है? यह मोहितसिंह तो ताराका प्रणयी था।—और भी कितने प्रणयी होंगे, कौन जाने!—यह न होता तो जयमल ताराके शयनागारमें प्रवेश करनेका साहस करता? यह न होता तो तारा एक राज्यके लिए अपनेको बेचती? चाचीके मुखसे यह भयानक स्वीकारकी कहानी सुननेके बादसे स्त्रीजातिके

सम्बन्धमें ऐसी किसी बात पर अविश्वास करनेको जी नहीं चाहता। सब कुछ संभव है! देखता हूँ, ताराका इतिहास भी ठीक उसी इतिहाससे मिलता है!—सभी स्त्रियोंका क्या यही हाल है? वे केवल स्वामीके धन, मान और सामर्थ्यके लिए ही उसका आदर, आग्रह और सेवा करती हैं? घृणा पैदा हो गई है। इस स्त्रीजाति भर पर घृणा पैदा हो गई है।—लो, वह तारा आ रही है।

[ताराका प्रवेश और संकुचित भावसे द्वारपर खड़े रहना]

पृथ्वी०—क्या चाहती हो?

(तारा चुप रहती है)

पृथ्वी०—चुप क्यों हो?

तारा—तुम क्या कहीं जाते हो?

पृथ्वी०—हाँ, जाता हूँ—सिरोही राज्यको—

तारा—क्यों! एकाएक?

पृथ्वी०—क्यों! (स्वगत) कह दूँ, क्या हर्ज है। (प्रकट) उस दिन यमुनाकी चिट्ठी आई है, जानती हो?—यमुनाने मुझे बुला भेजा है।

तारा—(सिर झुकाये) मैं भी साथ चलूँगी।

पृथ्वी०—नहीं।

तारा—क्यों नाथ?

पृथ्वी०—सब बातें सुननेसे कोई लाभ नहीं है, तारा।

तारा—(कुछ चुप रहकर) नाथ! एक दिन था, जब आप सब बातें खुलासा करके मुझसे कहते थे।

पृथ्वी०—वह दिन अब नहीं है, तारा।

तारा—क्यों स्वामी ? मैंने क्या दोष किया है ?

पृथ्वी०—(स्वगत) ठीक इसी तरह । चाची भी ठीक इसी तरह कहती थीं ।

तारा—मैंने इस पर लक्ष्य किया है नाथ कि एक महीनेसे मेरे ऊपर तुम्हारा वह प्रेम, वह निर्भर, वह विश्वास नहीं है ।

पृथ्वी०—कुछ भी सदा नहीं रहता, तारा ।

तारा—रहता है । स्वामी और स्त्रीका सम्बन्ध सदा रहता है । इस नाशशील संसारमें यही एक सम्बन्ध चिरस्थायी है—पर्वतकी तरह अटल है, समुद्रकी तरह गहरा है, नक्षत्रकी तरह उज्ज्वल है । यह संबंध इस लोकका है, यह संबंध परलोकका है ! यह सम्बन्ध मिटता नहीं प्रभो ।

पृथ्वी०—ओः, कैसी भयंकरता है !

तारा—मैंने अगर कुछ अपराध किया हो, क्षमा करो । तुम मेरे प्रभु हो, मैं तुम्हारी दासी हूँ । मैं पग पग पर तुम्हारी अपराधिनी हूँ ।—क्षमा करो ।

पृथ्वी०—(स्वगत) चाची भी ठीक इसी तरह कहती थीं ।—बात बिलकुल मिलती है । (प्रकट) तारा ।—(लंबी साँस)

तारा—(पैरोंपर गिरकर) बोलो, मैंने क्या दोष किया है ?

पृथ्वी०—उठो तारा, कहता हूँ तुमने क्या दोष किया है । (स्नेहपूर्वक ताराके दोनों हाथ पकड़कर)—तारा ! तुमने मेरे साथ ब्याह क्यों किया ?

तारा—तुम तो सब जानते हो ।

पृथ्वी०—(हाथ छोड़कर, कठोर स्वरसे) जानता हूँ—सब जानता हूँ । और तुम जिस बातको जानती हो कि मैं नहीं जानता, उसे भी जानता हूँ ।

तारा—क्या जानते हो ?

पृथ्वी०—तुम्हारे पिछले जीवनका हाल । उस बातको जाने दो !—तारा ! तुमने चाहा था अपने पिताका छिना हुआ राज्य, सो तुम पागई । तुमने अपने जो दाम माँगे थे सो पागई । और क्या चाहती हो ? तुम्हारे मा-बापने तुम्हारे रूपका फंदा डाल रक्खा था रानाका समधी होनेके लिए । उस फंदेमें पड़कर अबोध बेचारा भाई जयमल अपनी जानसे गया; और फिर उसी फंदेमें जाकर मैं फँस गया ।—तुम सबने जो चाहा था, वह मिल गया । और भी कुछ चाहती हो ? कहो, देता हूँ ।—हा ईश्वर !—स्त्रीके रूपका कैसा फंदा बनाया है ! (प्रस्थान)

तारा—नाथ ! इस बातको न कहकर कलेजेमें कटारी मारकर ही क्यों नहीं चले गये ?—अहो भगवन् ।—यहाँतक !

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—पाभूरावका विलास-भवन ।

समय—रात्रि ।

[पाभूराव और मुसाहब लोग ।
सामने नाचनेवालियाँ]

पाभू०—वाहवाह वाहवाह ! नाचो और नाचो ! रूपका फुहारा छुड़ा दो ।

सब मुसा०—(साथ ही साथ) रूपका फुहारा छुड़ा दो ।

पाभू०—स्वर्गराज्यको मनुष्यलोकमें ले आओ । जीवनका सारांश है सौन्दर्य, और सौन्दर्यका सारांश है सुन्दरी ।—ए ढालो ।

सब मुसा०—ए ढालो।

पाभू०—स्त्री शब्दसे १५ से लेकर २० वर्ष तककी प्रायः सभी स्त्रियोंका बोध होता है। केवल अपनी औरत और मा-बेटी-बहन-बहू-बुआ वग़ैरह सम्बन्धकी औरतोंको छोड़कर।

सब मुसा०—हाँ हाँ, अमरकोषमें ऐसा ही लिखा है।

पाभू०—लिखा है?—हिः हिः हिः।

सब मुसा०—हिः हिः हिः!

पाभू०—कैसी चीज़ है, जानते हो!—बिलकुल एक ही ढंगकी!

सब मुसा०—बिलकुल, राजासाहब।

पाभू०—किन्तु स्त्री चीज़ कैसी है, जानते हो? मेरी समझमें तो पत्रे (पञ्चांग) की तरह है। कम-से-कम सालभरके बाद तो ज़रूर ही बदल डालना चाहिए। हिः हिः हिः!

सब मुसा०—हिः हिः हिः!

१ मुसा०—देखता हूँ, आज तो राजासाहबके मुँहसे रसिकताका फुहारा छूट रहा है।

२ मुसा०—शराबके बिना कहीं यथार्थ रसिकता हो सकती है दादा।

पाभू०—हाँ—तो और ढालो।—गाओ पृथ्वीकी अप्सराओ—

मुसाहबों और नाचनेवालियोंका गान।

(तर्ज थियेटर)

खोलो खोलो बोतल यार, ढालो ढालो ढालो ढालो।
तेज़ शराब रूपके संग, अच्छी लगती, जमता रंग;
बढने लगती नई उमंग, बस बस, जल्दी ढालो ढालो।

सरस, लाल, ओठोंसे बढ़कर, मदिरा स्वर्णपात्रमें भरभर,
पियो, जियो जब तक धरती पर, चुक जावे तो और मँगालो ।
परी जमाल बग़लमें पावें, मदिरा, मुँहसे तुझे लगावें,
रगरगमें लालसा-अग्निको, धीरे धीरे बालो बालो ।
हम स्वरूपकी आहुति डालें, जले द्विगुण कामानल उससे ।
हम उर्वशी काम सागरसे, निकलीं, तुम विष हो; घर घालो ।
हम आँधीसी चलें यहाँ पर, तुम बहियासी आओ बढकर ;
सर्वनाश बिन किये यहाँसे, बाहर पैर कभी न निकालो ।

[चन्द्रावका प्रवेश]

पाभू०—चन्द्राव ? क्या ख़बर है ?

चन्द्र०—बड़ी अच्छी ख़बर है राजासाहब, बड़ी अच्छी ख़बर है।

पाभू०—कैसे !—कैसे !

चन्द्र०—पृथ्वी—

पाभू०—फिर "पृथ्वी" । हैरान कर डाला । "पृथ्वी" के सिवा क्या और कोई बात ही नहीं है ?

चन्द्र०—यही तो जान पड़ता है ! राह-घाटमें, जंगलमें, मैदानमें, जहाँ जाता हूँ, केवल पृथ्वीका ही नाम सुन पड़ता है । कुल-कामिनियोंके मुँहसे यही नाम सुन पड़ता है; चारण-कवियोंके मुँहसे इसी नामकी महिमा सुन पड़ती है; सभाओंमें, देव-मन्दिरोंमें—

पाभू०—रहने दो, रहने दो । उसको क्या हुआ, कह डालो । वह मर गया—यह कह सकते हो ?

चन्द्र०—जी, वह ऐसा आदमी ही नहीं है। बल्कि दो सप्ताहके बाद उसका अभिषेक है। राना अब राजकाजसे छुट्टी ले रहे हैं। अब पृथ्वीराज ही राना होगा।

पाभू०—पृथ्वी राना?

चन्द्र०—क्यों, रानाका लड़का तो राना होगा ही; इसमें आपने आश्चर्यकी बात क्या देखी? आपको काहेका दुःख है?

पाभू०—पृथ्वीने मेरे मुँहका कौर छीन लिया, और तुम कहते हो मुझे दुःख काहेका है?—दग़ा! धोखा!—संग लापता है, जयमल मर गया, पृथ्वीराज देशनिकालेका दण्ड पाये हुए है। इससे मैं ही रानाका उत्तराधिकारी क्या नहीं था?—दग़ा! चोरी! धोखेबाज़ी!—इसीलिए तो मैंने इतने दिनों तक रानाकी लड़कीको खिलाया-पिलाया था। आज मैं उसको मारकर घरसे बाहर निकाल दूँगा।—ए कौन है?

[दो चोपदारोंका प्रवेश]

पाभू०—जाओ, रानीको यहाँ अभी ले आओ। सिर्फ़ ले ही न आओ, कुत्तेकी तरह जंजीरसे बाँधकर ले आओ।

चोप०—जो हुक्म राजासाहब। (प्रस्थान)

चन्द्र०—राजा साहब!

पाभू०—चुप रहो!

(मुसाहब लोग चुप रहते हैं)

चन्द्र०—तो मैं जाता हूँ राजासाहब। (प्रस्थान)

पाभू०—सब षड्यन्त्र है!—रानाने लड़केको देशसे निकाल दिया था। अब उसे बुला भेजा सिर्फ़ मुझे राना-पदसे वञ्चित करनेके लिए।—यहाँतक जुआचोरी!—ढालो—ए ढालो।

मुसा०—ए ढालो।—गाओ गाओ।

(नाचनेवालियाँ गाती हैं)

खोलो खोलो बोतल यार,

ढालो ढालो ढालो ढालो।

इत्यादि।

पाभू०—ए चुप रहो।

मुसा०—चुप रहो।

पाभू०—मैं आज बदला लूँगा! बदला लूँगा। (टहलता है) सब जुआचोरी है!

[जंजीरसे बँधी हुई यमुनाका प्रवेश]

चोप०—राजासाहब! ले आये।

पाभू०—ले आये, अच्छा किया—ए यमुना!

(यमुना चुप रहती है)

पाभू०—मैं आज तेरा अपमान—तेरी बेइज़्ज़ती—करूँगा।

यमुना—अपमान और बेइज़्ज़ती तो रोज़ ही करते हो। बाक़ी क्या रक्खा है?

पाभू०—जो कुछ बाक़ी रक्खा है, वह आज करूँगा। आज तुझे जूते मारकर घरसे बाहर निकाल दूँगा।

यमुना—यही करो। यह आफ़त दूर हो जाय। यही करो! अब और नहीं सहा जाता।

पाभू०—ना, तुझे सिर्फ़ राज्यसे निकाल देनेसे कुछ न होगा। तुझे शिकारी कुत्तोंसे नुचवाऊँगा।

यमुना—मेरा अपराध क्या है महाराज!

पाभू०—तेरा अपराध यह है कि रायमल तेरा बाप है और पृथ्वीराज तेरा भाई।

यमुना—यही अपराध है! इस अपराधको मैं स्वीकार करती हूँ, राजासाहब! इसके लिए जो चाहे सज़ा दो, मैं उसे सिर-आँखों पर लेनेको तैयार हूँ। वही इस जीवनकी सान्त्वना और अपमानमें अहंकार है। मैं जो तुम्हारा इतना अत्याचार सहती हूँ सो यही समझ कर कि मैं रानाकी लड़की और पृथ्वीराजकी बहन हूँ। मैं यही समझकर अपने अपमानको अपमान नहीं समझती कि मैं जब चाहूँ तब इस अपमानका प्रतिकार कर सकती हूँ। लेकिन प्रतिकार करती नहीं; क्योंकि तुम चाहे जैसै हो, मेरे पति हो। प्रतिकार नहीं करती, इस लिए कि मैं हिन्दूरमणी हूँ। हिन्दूधर्म यही शिक्षा देता है कि पति पाजी, पापी, पतित होने पर भी स्त्रीका देवता है। इसीसे अबतक इतना सहा है; अपमानको सिर झुकाकर स्वीकार किया है। छाती फट गई है तो भी सहा है, आँसुओंसे छाती भीग गई है तो भी सहा है। नहीं तो क्या तुम समझते हो कि मैं मुट्ठीभर अन्नके लिए तुम्हारे द्वारपर पड़ी हुई हूँ?—मैं—जिसके पिता राना रायमल हैं, जिसका भाई जगत्प्रसिद्ध पृथ्वीराज है—वह हूँ।

पाभू०—हाँ! तेरा घमंड अभी चूर किये देता हूँ। मैं अगर यहाँ तुझे लातोंसे मारूँ तो तेरा बाप क्या कर सकता है? और तेरा भाई ही क्या कर सकता है?

(बाल पकड़कर लात मारना, यमुनाका गिर पड़ना)

[पाँच सिपाहियोंके साथ वेगसे पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—पाभूराव! यह क्या?

(गर्दन पकड़ना। मुसाहबोंका चिल्लाना और भागना)

पाभ०—कौन ? हैं पृथ्वीराज ? छोड़ो ।

पृथ्वी०—(छोड़कर तलवार निकालकर) निकाल तरवार ।

पाभ०—एँ, तरवार क्यों निकालूँ ? ए—कौन है ?

पृथ्वी०—नामर्दकी तरह चिल्लाता क्यों है ? मर, वीरोंकी तरह मर । आज तेरे जीवनका अन्तिम दिन है । क्या ! तरवार नहीं निकालेगा ? (गला पकड़कर धक्का देना । पाभूरावका गिरना । पाभूरावकी छाती पर पृथ्वीका बैठना) पाभूराव, यही तेरी आखिरी घड़ी है । इष्टदेवका नाम ले । (तरवार तानना)

पाभू०—(कातर स्वरसे) क्षमा करो पृथ्वीराज !

पृथ्वी०—क्षमा माँग यमुनासे—उसके पैर पकड़कर क्षमा माँग कापुरुष !

पाभू०—यमुना ! पैरों पड़ता हूँ, क्षमा करो ।

यमुना—मँझले दादा ! यह चाहे जैसे हों, मेरे पति हैं । अभी इन्हें छोड़ दो ।

पृथ्वी०—(छोड़कर स्वगत) एं ! देखता हूँ, स्त्रियाँ ऐसी भी होतीं हैं !—वही तो !—(प्रकट) अच्छा । छोड़ दिया अबकी, पाभूराव, याद रहे, अबकी यमुनाकी कृपासे तुम्हारे प्राण बच गये । (धक्का देकर) क्यों, याद रहेगा ?

पाभू०—रहेगा ।

पृथ्वी०—फिर अगर मैंने सुना कि तुमने यमुनाकी देहमें हाथ लगाया तो बस समझ लेना, तुम्हारी जान नहीं बचेगी । यमुना पृथ्वीराजकी बहन है; याद रहेगा ?

पाभू०—अच्छी तरह याद रहेगा ।

पृथ्वी०—चलो यमुना, घरके भीतर । इस मतवालोंके अड्डेसे चलो । (पृथ्वी और यमुनाका प्रस्थान)

पाभू०—(दाँत पीसकर) पृथ्वो ! इसका बदला लूँगा !—पूरा बदला लूँगा । न लूँ तो मेरा नाम पाभूराव नहीं ।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य ।

स्थान—बगिया ।

समय—सायंकाल ।

[अकेली तारा]

ठुमरी ।

ये हियेकी बिथाको मिटाय सके, बिन वाही सलौने साँवरिया ;
दियो आपने हाथसों वाको हियो, कियो मोहिं तो बालम बावरिया ।
रह्यो घेरिकै घोर अँधेरो हियो, तिहि दूर करै को विना पियके ;
अपन हियसों हिय मेरो सखी, वह घेरि रह्यो भरि भाँवरिया ।

तारा—क्यों व्याकुल हो रहा आज मेरा हृदय !
फड़के बारंबार आँख यह दाहनी !
धड़के छाती !

(फिर टहल-टहलकर गाती है)

अब माधुरी नाहि रही मधुरे अधरान मिट्यो रसरंग सबै ;
परी पाँयन लोटै अनादरसों, वह शारद चन्दकी चाँदनियाँ ।
छिपे चन्द्रमा तारा सबै घनमें, अब दुर्दिनकी है बुरी ये घड़ी ;
हँसै जैसे अकास प्रकासके पुंजको, व्याकुलकै कुल कामिनियाँ ।

सच है !—सोचा नाथने—
इतनी हूँ मैं नीच ! ख्याल उनको हुआ
ऐसा ही ?—हा !—

[दासीका प्रवेश]

दासी— रानी—
तारा— मैं रानी नहीं:—
मैं केवल तारा हूँ । बस, तारा कहो ।
दासी—यह क्यों राजकुमारी ?
तारा— "क्यों" का कुछ नहीं
उत्तर देना चाहूँ । मैं रानी नहीं;
राजकुमारी नहीं ।—मुझे तारा कहो !
मैं चाहूँ सम्मान नहीं इससे अधिक ।
दासी—हम साधारण स्त्रियाँ ! न समझें नामकी
इतनी महिमा । जो अबतक कहती रही,
वही कहूँगी ! राजकुमारी ! एक स्त्री
खड़ी द्वार पर—मिलना चाहे आपसे !
तारा—कैसी है वह स्त्री ?
दासी— कोई दुखिया बड़ी ।
तारा—दुखिया है ? ले आओ ।

(दासीका प्रस्थान)

प्रियतमने मुझे
दोष लगाया बहुत बड़ा—अन्यायसे ।
प्राणेश्वर !—मैं राज्य चाहती हूँ ! मुझे

अबतक जाना नहीं—न पहचाना हृदय
प्राणनाथ !—हे ईश ! मृत्यु—बस मृत्यु दो।

(फिर वही गीत गाती है)

[तमसा और दासीका प्रवेश]

दासी—यह आई है।

तारा— आप कौन हैं ?

तमसा— सुन्दरी,
मुझे नहीं पहचान सकोगी ।—और कुछ
नहीं प्रयोजन भी इसका है।

तारा— चाहती
क्या हो ?

तमसा— बस, कल्याण तुम्हारा चाहती !—

तारा—तुम—मेरा कल्याण ?

तमसा— तुम्हारा—सुन्दरी।
—तारा ! पृथ्वीराज कहाँ हैं ?

तारा— वह गये
बहनोईके यहाँ—सिरोही-राज्यमें।

तमसा—साथ गई तुम नहीं ?

तारा— नहीं, मैं तो नहीं
गई।

तमसा— अभी तुम जाओ।

तारा— यह क्यों ?

तमसा— सब नहीं
समझ सकोगी। केवल इतना जान लो—

यमुनाका पति पाभू पृथ्वीराजका
मित्र नहीं है। नीच-प्रकृति है। दे सके
विष भोजनमें; मार सके आकर छुरी
पीछेसे ।

तारा— तुम उसे जानती हो ?

तमसा— उसे
खूब जानती हूँ ! तुमने अच्छा नहीं
किया, गई जो साथ नहीं। जाओ अभी।

(प्रस्थान)

तारा—समझी समझी।—आज इसीसे दम-ब-दम
धड़क रही है छाती; आँखोंमें भरे
आते आँसू। क्यों छोड़ा प्राणेशको।
जहाँ, जिस जगह, जाते जाती साथ थी;
अबकी ही क्यों नहीं गई ? यह क्या, कहे
जैसे कोई मेरे कानोंमें यही—
ठहर ठहरकर, बार बार—"उनसे नहीं
मिलना होगा !—अब दर्शन होंगे नहीं !"
हे जगदीश्वर ! मत बनना ऐसे निठुर।
ताराको लौटा दो उसकी आँखका
तारा प्यारा।—नाथ, तुम्हारे पास मैं
आती हूँ, मैं आती हूँ। रक्षा करो—
मात भवानी !—प्राणेश्वरकी, वहाँ तक
जबतक पहुँचूँ न मैं।—क्रोध, अभिमान या
खेद लाञ्छनाका—अपने अपमानका—

रहा नहीं । प्राणेश पड़े आपत्तिमें,
तब मैं कैसे मूढ़भावसे रूठकर
बैठ रहूँगी यहाँ ?—जीवनाधार प्रिय,
क्षमा करो ! मैं आती हूँ; देरी नहीं । (प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—पाभूरावका सजा हुआ अन्तःपुर ।

समय—दोपहर ।

[अकेले पृथ्वीराज टहलते हुए]

पृथ्वी०—व्याकुलसा हो रहा हृदय, चित्तौरको
फिर जानेके लिए । खींचती हैं मुझे
घरको, वे अभिमान-भरी, आँसू-भरी
निर्मल नीली दोनों आँखें । अब मुझे
समझ पड़ा भ्रम—किया बड़ा अविचार ही !
क्षमा करो प्रियतमे ! सदासे मैं—प्रिये—
ऐसा ही उद्दण्ड उग्र हूँ; क्या करूँ ।

[पाभूरावका प्रवेश]

पाभू०—पृथ्वी ! तो तुम जाओगे क्या आज ही ?
पृथ्वी०—हाँ, जाऊँगा आज, अभी ।
पाभू०— मत सोचना,
आये हो तुम घरमें नातेदारके;
इस घरको तुम अपना ही घर जानना,
पृथ्वी । दो दिन और रहो ।

पृथ्वी०— 　　　　　　　　　　भाई नहीं;
जाना होगा आज अभी चित्तौरको ।

पाभू०—(स्वगत) जाना होगा ऐसा, लौटोगे नहीं ।
(प्रकट) समझ गया मैं, महलोंमें चित्तौरके
तकते होंगे राह, चाहसे चटपटे
दो उत्कण्ठित नयन ।

पृथ्वी०— 　　　　　　　　　　सत्य तुमने कहा
यह तो पाभूराव ।

पाभू०—(स्वगत) 　　　　　　　　रहें—तकते रहें;
इस जीवनमें कभी देख सकते नहीं
तुमको, पृथ्वीराज ।

[यमुनाका प्रवेश]

यमुना— 　　　　　　　　　　रहोगे अब नहीं—
घरमें जाओगे दादा ?

पृथ्वी— 　　　　　　　　　　हाँ, प्यारी बहन !
जाता हूँ मैं अभी ।

यमुना— 　　　　　　　　　　ठहर जाओ ज़रा,
मुँह तो मीठा कर लो; अपने हाथसे
मीठा कुछ तैयार किया है सो अभी
लाती हूँ मैं भाई । (प्रस्थान)

पाभू०— 　　　　　　　　　　मैं भी आपके
लिए सिरोहीके बढ़िया लड्डू अभी
बनवाकर हलवाईसे लाया यहाँ ।
चखकर देखो तो कैसे लड्डू बने ।

पृथ्वी०—लाओ, दे दो, लेता जाऊँ।

पाभू०— यह नहीं
होगा; खा लो यहीं सामने। इस तरह,
बिना खिलाये, जी मानेगा ही नहीं।

पृथ्वी०—रहने ही दो—खा लूँगा घरमें।

पाभू०— नहीं
खा लो पृथ्वी; मैं छोड़ूँगा यों नहीं।

पृथ्वी०—तो जल्दी दो।

पाभू०— यह लो। (देना और पृथ्वीका खाना)
कैसे हैं, कहो ?

पृथ्वी०—अच्छे हैं ! कुछ कड़वे हैं।

पाभू०—(स्वगत) इतने दिनों
बाद मनोरथ आज पूर्ण मेरा हुआ।

पृथ्वी०—तो आओगे तुम अवश्य अभिषेकमें ?

पाभू०—निश्चय आऊँगा।

पृथ्वी०— यह क्या ! क्या बात है !—
चक्कर-सा आ रहा मुझे !

पाभू०—(स्वगत) होने लगा
असर जहरका।

[मिठाई लिये यमुनाका प्रवेश]

पृथ्वी०— यमुना, चक्कर आ रहा !
पानी लाओ।

यमुना— क्या चक्कर-सा आ रहा !
क्या कारण है ? (प्रस्थान)

पृथ्वी०—(अस्थिरभावसे)
पाभू ! सच-सच कहो—दग़ा तो की नहीं ?
लड्डूमें विष मिला हुआ था ?
[जल लेकर यमुनाका प्रवेश]
यमुना— ख़ूब ही
ठंडा पानी लाई हूँ; यह लो—पियो।
पृथ्वी०—(जलपीकर)
पाभू, सच-सच कहो, दग़ा तो की नहीं ?
पाभू०—झूठ क्यों कहूँ, काम दग़ाका अब नहीं
रहा। सत्य है पृथ्वी ! जो लड्डू अभी
खाये तुमने, उनमें विष था।
पृथ्वी०— विष ? दिया
किसने विष ?
पाभू०— यह सब मेरा ही काम है।
पृथ्वी०—पाभू, तो बस एक बार इस जन्ममें
तुमने यह सच बात कही है ! मैं तुम्हें
नीच क्रूर कापुरुष जानता था; मगर
यह सोचा था नहीं कि इतने नीच हो !
तुमने क्यों विष दिया मुझे, पाभू, भला ?
पाभ०—पृथ्वी ! तुमने कई बार बल-दंभसे
मेरा जो अपमान किया था, यह उसी
का बदला है। नित्य राहमें, घाटमें,
घर-बाहर, सब जगह तुम्हारा ही सुयश
सुन-सुनकर पक गये कान। मैं डाहसे
कुढ़ता था। यह उसका ही बदला लिया
मैंने पृथ्वीराज !

पृथ्वी०— बहुत अच्छा लिया
बदला। पाभूराव!—हाय!—लाचार हूँ!
तुम यमुनाके स्वामी हो! अब क्या करूँ!

यमुना—वैद्य बुलाऊँ?

पाभू०— त्रिभुवनमें ऐसा नहीं
कोई भी है वैद्य! बड़ा ही है विकट
यह विष। इसकी दवा कहीं है ही नहीं।

पृथ्वी०—वैद्य बुलाना मत।—यमुना! यमुना!—मुझे
छोड़ न जाना अन्तसमयमें। अब नहीं
कुछ विलम्ब है मेरे मरनेमें; बहन—
अन्धकारमय जगत् जान पड़ता सभी।

पाभू०—सच है—यमुना, बहुत देर है अब नहीं!
प्रिये! बहुत तुमको पृथ्वीका जोर था!
—अब!

यमुना—(घुटने टेककर)
जगदीश्वर! करुणामय! रक्षा करो;
समझ न पड़ता, मेरा स्वामी कौन है?—
नर है, अथवा नरककुण्डका कीट है?
क्या मनुष्य भी ऐसा होता है? अहो,
ऐसा कायर, दुष्ट, नीच नर हो सके?
प्राण दिये जिस अभ्यागतने एक दिन;
जो अभ्यागत सबको अपने ही सदृश
सरल, उदार समझता था—इतना बड़ा
उच्च उदार महाशय था, विश्रब्ध था,
उसको ऐसे अनायास विष दे सके

भोजनमें ?—हा !—ईश्वर ! ऐसा जीव भी
है मनुष्य क्या ? जान पड़े, कुछ और है।
जैसे कोई कीड़ा, कीचड़से सना,
पड़ा हुआ है दूर; देख पड़ता मुझे।

पृथ्वी०—यमुना—यमुना !

पाभू०— यमुना, भाईकी सुनो।
'प्यारे भाई' कहकर बोलो तो ज़रा। (प्रस्थान)

पृथ्वी०—यमुना, यमुना ! प्रिय मेरी छोटी बहन—

यमुना—(पृथ्वीका सिर गोदमें लेकर)
क्षमा करो मेरे भाई। मेरे यहाँ
आये थे, मेरे कहनेसे, हो अतिथि।
मेरे पतिके ही हाथोंसे अन्तको
दशा हुई यह ! तुमने तो आकर यहाँ
मुझे बचाया; बचा सकी मैं ही नहीं
तुमको—भैया— (रोना)

पृथ्वी०— रोओ मत प्यारी बहन—
करता हूँ अनुरोध—अगर तारा मिले—
उससे कहना—मैंने—मरनेके समय—
क्षमा-प्रार्थना—उससे की थी।—आह—अब—
यमुना—कुछ सूझता नहीं;—सारा जगत—
अन्धकारमय हुआ—भूलना मत—बहन—
तारा—से—कह देना—जाता हूँ;—हरे ! (मृत्यु)

यमुना—(ऊंचे स्वरसे) दादा ! दादा ! दादा ! दीपक बुझ गया—
सोनेके पिंजड़ेसे पक्षी उड़ गया।

इस खाली पिंजड़ेको अपनी गोदमें
रखकर अब क्या करूँ—(पृथ्वीका सिर
पृथ्वी पर रखकर खड़े होकर) वीरवर, तो चलो—
चलो स्वर्गको। पीछेसे हम लोग भी
आते हैं।—तुम थे उदार, स्नेही, बड़े
विक्रमशाली। कीर्ति तुम्हारी हर जगह
चारण कवि गावेंगे राजस्थानमें।
जाओ, जाओ स्वर्गलोकको।—कौन वह
आता! यह तो तारा है उन्मादिनी।

[ताराका प्रवेश]

तारा—कहाँ! कहाँ हैं प्राणनाथ! यमुना! कहाँ
हैं प्रियतम!—

(यमुना चुप रहती है)

इस जगह पड़े हैं भूमिमें
क्यों ऐसे प्राणेश? हृदयसर्वस्वका
चेहरा क्यों पड़ गया स्याह?—यमुना!—कहो।

यमुना—तारा! तारा! क्या देखो,—क्या देखने
आई हो! अब पृथ्वी इस जगमें नहीं।

तारा—कहाँ नहीं हैं पृथ्वी? यमुना क्या कहो?

यमुना—हाय कहूँगी क्या! कहनेको कुछ नहीं।
—हत्या, हत्या—तारा!—हत्या की गई।

तारा—हत्या? हत्या किसने की? जल्दी कहो।

यमुना—हाय कहूँ क्या तारा! मेरे ही अधम
पतिने की है हत्या।

तारा— कैसे ?

यमुना— विष दिया ।

तारा—विष ? विष ? (स्तंभितभावसे) पृथ्वीराज नहीं हैं तो ?—कहो—

सच है ? क्या यह सच है ? सारी देहका
रक्त पहुँचकर सिरमें चक्कर खा रहा ।
समझ न पड़ता कुछ भी । पृथ्वी हैं नहीं ?

यमुना—नहीं—नहीं हैं । हाय अभागिन । हम बहन
दोनों आओ आपसमें लगकर गले
ऊँचे स्वरसे रोवें । भाई खो दिया
मैंने, तुमने गँवा दिया पति । एक ही
दुखसे रोवें आओ ।

तारा— तो वह चल दिये ?—
इतनी रिस थी ! हाँ, ऐसा अभिमान था !
एक बार भी बात नहीं की ? हाँ, जरा
देखा मेरी ओर नहीं ! इतना किया
था मैंने अपराध ?

यमुना— मृत्युके कुछ प्रथम,
भाई, तुमसे तारा, यह हैं कह गये—
तारासे कह देना, मरनेसे प्रथम,
मैंने जीसे माँगी थी उससे क्षमा ।

तारा—क्षमा !—झूठ है ! यमुना ! यह सब झूठ है ।
वे अभिमानी बड़े ! बड़े ही हैं निठुर !
बिना कहे चल दिये—इसीसे चल दिये ।
नाथ ! प्राणपति !—अबकी धोखा दे गये

किया न आँखों-ओट कभी—२ 'बर्का किया,
वैसे ही कपटी—सुयोग पा चल दिए !
—अच्छा देखूँ ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ
जा सकते हो ? मैं भी आती हूँ वहीं
जंगल, सागर, या पहाड़ पर तुम रहो;
तुमसे आकर आज मिलूँगी मैं वहीं !
स्वर्ग—मर्त्य—पाताल लोकमें, मैं तुम्हें
ढूँढ निकालूँगी छलिया ! तुम सोचते
होगे—वृथा विलाप करूँगी मैं यहाँ;
पास तुम्हारे नहीं जा सकूँगी। नहीं—
नहीं छलो ! यह तो हो ही सकता नहीं।
—मैं भी आऊँ ?—जल, दावानल, मृत्युपथ
और प्रलयके भी भीतर होकर वहाँ—
मैं आऊँगी। सुखमें, दुखमें, ऐशमें
और कष्टमें, ज्ञान और अज्ञानमें,
जीवनमें भी और मरणमें भी—प्रभो—
बनी रहूँगी सदा तुम्हारे पास ही।—
देखूँ, मुझको कौन रोकता है भला।

(छातीमें कटार मारकर पृथ्वीराजके पैरोंपर गिर पड़ना)

यमुना—यह क्या ! कैसा सर्वनाश ! तारा ! अरे
तारा ! यह क्या किया ? क्या किया ?

तारा— क्या किया ?
पतिव्रताका, पत्नीका, स्त्रीजातिका
काम किया। आ मौत—जानती थी नहीं,
तू इतनी है स्निग्ध मधुर प्यारी—बहन ?

सखी सतीत्व! तू ही है सच्ची मुझे
ले चल पतिके पास।

(यमुनासे)—बिदा—तुमसे बिदा
होती हूँ अब बहन! सती पतिके निकट
जाती है।

यमुना— यह तुमने तारा क्या किया—
यह क्या ?

तारा— मेरी आज मिलनकी रात है!
मेरी प्यारी बहन, मिलनकी रात है!

(हँसते-हँसते मृत्यु)

यमुना—अन्धकार! बस अन्धकार है! हे हरे!

(गिर पड़ना)